

सभाष्य रत्नमञ्जूषा

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

भारतीय ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला : संस्कृत ग्रन्थांक–५

अज्ञातनामधेयजैनग्रन्थकृद्विरचिता

सभाष्या रत्नमञ्जूषा

सम्पादन

हरि दामोदर वेलणकर

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

वीर नि० संवत् २४७५ : वि० संवत् २००६ : सन् १९४९

प्रथम संस्करण : मूल्य पाँच रुपये

स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवीकी पवित्र स्मृतिमें तत्सुपुत्र साहू शान्तिप्रसादजी द्वारा

संस्थापित

भारतीय ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमालाके अन्तर्गत प्राकृत संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड़, तमिल आदि प्राचीन भाषाओंमें उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक जैन-साहित्यका अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन तथा उसका मूल और यथासम्भव अनुवाद आदिके साथ प्रकाशन हो रहा है। जैन भण्डारोंकी सूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, विशिष्ट विद्वानोंके अध्ययन-ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमालामें प्रकाशित हो रहे हैं।

●

ग्रन्थमाला सम्पादक

डॉ. हीरालाल जैन, एम ए., डी लिट्

डॉ. आ. ने. उपाध्ये, एम. ए., डी. लिट्

●

प्रकाशक

भारतीय ज्ञानपीठ

प्रधान कार्यालय . बी/४५—४७, कनॉट प्लेस, नयी दिल्ली

प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी

मुद्रक सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी

●

स्थापना : फाल्गुन कृष्ण ९, वीर नि० २४७०, विक्रम सं० २०००, १८ फरवरी १९४४



स्व० मूर्तिदेवी, मातेश्वरी सेठ शान्तिप्रसाद जैन

प्रास्ताविकं किञ्चित्

भारतीय ज्ञानपीठ के अनुसन्धान विभाग में विभिन्न विषय के संस्कृत प्राकृत भाषा के अनेक ग्रन्थों का सम्पादन चालू है। मूल ग्रन्थ प्रामाणिक रीति से उपलब्ध प्राचीन प्रतियों के आधार से सम्पादन के साथ ही साथ यथासंभव हिन्दी अनुवाद, संस्कृत हिन्दी या अंग्रेजी में टिप्पणी तथा अनुक्रमणिका परिशिष्ट आदि सहित सर्वाङ्ग सुन्दर प्रकाशित होते हैं। प्रस्तावना में जहाँ मूल ग्रन्थ के विविध मुद्दों का स्पष्टीकरण करने का क्रम है वहाँ ग्रन्थस्थ पदार्थ का नवीन सांस्कृतिक दृष्टि से विवेचन भी किया जाता है जैसा कि न्यायविनिश्चय, तत्त्वार्थवृत्ति आदि की प्रस्तावनाओं में किया गया है।

मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला प्राकृत संस्कृत हिन्दी अंग्रेजी आदि कई भाषाओं में प्रकाशित होती है। इसका उद्देश्य ज्ञान की अप्रकाशित सामग्री को प्रकाश में लाना है। यह ग्रन्थमाला सेठ शान्तिप्रसाद जी की स्व० मातेश्वरी श्री मूर्तिदेवी के पुण्य स्मरणार्थ चालू की गई है और उनकी भव्य भावना के अनुसार इसमें महाबंध आदि सिद्धान्त ग्रन्थों के साथ ही साथ विविध विषयक जैन साहित्य का सम्पादन-प्रकाशन चालू है।

प्रस्तुत ग्रन्थ रत्नमञ्जूषा सूत्र पद्धति से लिखा गया जैन छन्दग्रन्थ है। मूल सूत्रकार के जैन होने में, टीकाकार का जैन होना तथा जैन छन्दोऽनुशासन के कर्ता आ० हेमचन्द्र द्वारा इसके छन्दों का ज्ञात होना आदि प्रमाण सम्पादक वेलणकर सा० ने उपस्थित किए हैं। टीकाकार का नाम भी अज्ञात है। चूँकि उसने मंगलश्लोक में जैन तीर्थंकर महावीर का स्मरण किया है और उदाहरण श्लोकों में प्राय सर्वत्र जैन परम्परा को ही ग्रथित किया है अत उसका जैन होना असन्दिग्ध है। ग्रन्थ के ज्ञातव्य मुद्दों पर विद्वान् सम्पादक ने प्रस्तावना मे पर्याप्त प्रकाश डाला है।

प्राध्यापक वेलणकर छन्द शास्त्र के अधिकारी विद्वान् हैं। इन्होंने इसका विशेष अध्ययन और अनुसन्धान किया है। आपके विशिष्ट अध्ययन और सतत अध्यवसाय का साक्षी तो आप के द्वारा सम्पादित 'जिनरत्नकोश' है। छन्दःशास्त्र पर आपने कई संशोधनात्मक निबन्ध भी लिखे हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ का समीक्षापूर्ण सर्वाङ्ग सम्पादन आपके सूक्ष्म परिशीलन का साक्षात् निदर्शन है। आप के सहयोग से ग्रन्थ-माला ऐसे ही अनेक ग्रन्थरत्नों से समृद्ध बनेगी।

भारतीय ज्ञानपीठ के संस्थापक सेठ शान्तिप्रसाद जी तथा अध्यक्षा सौ० रमा रानी जी की संस्कृति-प्रियता उदार दृष्टि और ज्ञानानुराग इस संस्था के जीवन हैं। इस भद्र दम्पति से अनेक ऐसे ही सांस्कृतिक कार्यों की आशा है।

ज्ञानपीठ के प्राकृत विभाग के सम्पादक डा० हीरालाल जी ने इस ग्रन्थ को इस रूप में सम्पादित कराने की योजना कराई है। इसके प्रूफ देखने में श्री प० महादेव जी चतुर्वेदी व्याकरणाचार्य ने सहयोग दिया है। प्रस्तावना का हिन्दी अनुवाद श्री बालचन्द्र जी शास्त्री एम ए ने किया है। अतः ये सब धन्यवाद के पात्र हैं।

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी
सुगन्धदशमी, भाद्रपद शुक्ला १०
वीर सं० २४७५

—महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य
ग्रन्थमाला सम्पादक

प्रस्तावना

रत्नमंजूषा संस्कृत छन्दशास्त्र विषयक ग्रन्थ है। ग्रन्थकार एक प्राचीन जैन है जिनके नाम और जीवन-विषयक घटनाओं से हम सर्वथा अनभिज्ञ हैं। पिंगल के छन्दशास्त्र के समान यह सूत्रों में लिखा गया है और इसमे आठ अध्याय हैं। विषय प्रतिपादन में भी पिंगल का सादृश्य तथा प्रभाव प्रतीत होता है। पिंगल से सादृश्य तथा उसका प्रभाव प्रतीत होते हुए भी रत्नमजूषा का कुछ रूप में पिंगल से मौलिक भेद भी हैं। जैन होने के नाते ग्रन्थकार वैदिक छन्दों का व्यवहार नही करता। सूत्रों से ग्रन्थकार के जैन होने का तो कोई चिह्न नहीं मिलता, लेकिन टीकाकार के जैन होने मे और इस बात को देखकर भी कि इसके कुछ छन्द हेमचन्द्राचार्य को ही ज्ञात है, पिंगल तथा केदार को नहीं, ग्रन्थकार के जैन होने की बात प्राय. निश्चित हो जाती है। टीकाकार का नाम भी हमें अज्ञात है। टीकाकार जैन था इसका प्रमाण हमे प्रस्तावना-श्लोक से मिलता है। प्राय. सभी उदाहरण टीकाकार के ही रचे हुए प्रतीत होते है। कुल ८५ उदाहरणों मे से ४० उदाहरण मुद्रा द्वारा अपने अपने छन्द का परिचय देते हैं। मुद्रा द्वारा छन्द का परिचय कराना इस बात का प्रतीक है कि उदाहरण इसी मौके के लिए रचे गये थे। यह भी संभव है कि ग्रन्थकार ने दूसरों से भी उदाहरण लिये हों विशेषत उस दशा मे जहाँ कि श्लोक छन्द को सूचित नही करते यद्यपि वहाँ भी यह बात सम्भव थी। २.४, पर ग्रन्थकार ने शाकुन्तल (१ ३३) से उद्धरण लेकर दिया है, और ६ २७ पर भास के प्रतिज्ञा यौगन्धरायण (२ ३) से। अन्य उद्धरण भी निम्नलिखित हो सकते हैं ३ ७ (कर्ण वैकर्तन), ४ २०.२ ('व्रता सेनापति') , ५ ५ (सेनापतिपुत्री) , ५ २०, ५ २८, ५ ३४ (केनुमान), ६.१२ , ६ २१ , ५.६ २९ (जहाँ वररुचि दौवारिक द्वारा नन्द को अपने आने की सूचना देता है) , ७ २१ , ७ ३२ (स्कन्द की स्तुति) तथा ७ ३३ निम्नलिखित श्लोक स्पष्ट रूप से जन धर्म का उल्लेख करते है —२ ५, १५ , ३ १९ , ४ ९ , ५.८, १७, २९, ३० , ६ ३, ६, १०, १३, १४ , ७ २६, २७, ३०। इनमें से नवाँ श्लोक अपने छन्द का उल्लेख नहीं करता और सम्भवत छन्द के उदाहरणार्थ इसकी रचना नही हुई दिखती। करीब २५ उदाहरण सामुद्रिक का उल्लेख करते है और प्राय सब में मुद्रा द्वारा ही छन्द प्रतीत कराया है। सम्भवत ये उदाहरण स्वय टीकाकार के रचे हुए प्रतीत होते हैं।

टीकाकार तीन-चार बार ग्रन्थकार का उल्लेख करता है लेकिन उन ग्रन्थकार के नाम का कहीं भी उल्लेख नहीं करता। ४.१, पर उनको केवल आचार्य नाम से ही याद करता है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है रत्नमजूषा विषयक प्रतिपादन में साधरण रूप से पिंगल का अनुसरण करता है और विषय को (वैदिक छन्दों को छोडकर) ८ अध्यायों मे बाँटता है। प्रथम अध्याय में ग्रन्थकार ग्रन्थ मे प्रयुक्त चिह्नों तथा पारिभाषिक शब्दों का निर्देश करता है। द्वितीय अध्याय में आर्या (१.१३) गीति (१४) आर्यागीति (१५) गल्तिक (१६) तथा उपचित्रक वर्ग के अर्धसम वृत्तों का लक्षण-प्रतिपादन करता है। तृतीय अध्याय मे वैतालीय १ ९ और मात्रासमक वर्ग के मात्रा-छन्दों का। अन्त में पिंगल के (४ ४८-५२) समान गीत्य आर्या, विशिखा और कुलिक का। लेकिन अध्याय का अन्त मात्रा वृत्त—नृत्यगीत तथा नटकरण—से करता है। इन अन्त के दो छन्दों का लक्षण-निर्देश, जहाँ तक मुझे मालूम है, हेमचन्द्राचार्य ही करते हैं, अन्य कोई नहीं। चतुर्थ अध्याय में ग्रन्थकार विषम वर्ण के—उद्गता (१–६) दामावारा या पदचतुरूर्ध्व (७–१२) तथा अनुष्टुभवक्त्र (११–२०) का लक्षण–प्रतिपादन

तथा उदाहरण देता है। (अध्याय चतुर्थ की प्रस्तावना देखें)। अध्याय पाँच से सात तक समस्त वर्णवृत्तों के लक्षण तथा उदाहरण दिये गये हैं। पिंगल के समान ग्रन्थकार गायत्री वर्ग से—जिसमें चार चरण तथा प्रत्येक चरण में ६ शब्द होते हैं—शुरू करता है लेकिन निम्नतर वर्ग के उक्ता, अत्युक्ता, मध्या, प्रतिष्ठा तथा सुप्रतिष्ठा को बिलकुल छोड़ देता है। (अध्याय प्रथम की प्रस्तावना तथा २०–२४ सूत्रों को देखें)। पाँचवें अध्याय के प्रारम्भ में ग्रन्थकार वर्णवृत्तों को तीन वर्गों—समान, प्रमान तथा वितान—में बाँटता है। पाँच से सात तक प्रतिपादित छन्द वितान के भीतर आते हैं। पाँचवें अध्याय में सूत्र १–१२ की टिप्पणी में जैसा मैंने कहा है कि २१ वर्णवृत्तों के इस प्रकार के विभाजन में ग्रन्थकार अकेला ही है। पिंगल तथा अन्य छन्दशास्त्र के रचयिता इस तीन तरह के विभाजन अनुष्टुभ वर्ग में ही सीमित करते हैं। अनुष्टुभ वर्ग के छन्द के प्रतिपादन के समय उनका निर्देश करता है। और विषम वृत्तों के प्रारम्भ में—जिसमें अनुष्टुभ वक्त्र का अन्तर्भाव होता है—हेमचन्द्राचार्य भी इसके अपवाद नहीं। ग्रन्थकार ८५ वर्णवृत्तों का लक्षण निर्देश करता है। इसको गायत्री से उत्कृति तक २१ वर्ग में बाँटा गया है। ८५ में से करीब २१ से पिंगल और केदार दोनों अपरिचित हैं। ग्रन्थकार का यह विभाग हेमचन्द्राचार्य से पुरस्कृत जैन परम्परा को ही ज्ञात हैं। पिंगल के करीब १६ छन्द भी छोड़ दिये गये हैं।

लेकिन दोनों में सबसे महत्त्वपूर्ण भेद चिह्न विषयक हैं। पिंगल ने वर्णवृत्त में छन्दबोध के लिये त्रिक का प्रयोग किया है। पिंगल में आठ व्यंजनों के आठ चिह्न हैं। ग्रन्थकार त्रिक को स्वीकार करते हैं लेकिन चिह्न बिलकुल बदल दिये हैं। ग्रन्थकार ने चिह्नों की दो रीतियाँ स्वर रीति और व्यंजन रीति प्रस्तुत की हैं। इसके अतिरिक्त ग्रन्थकार ने आठ त्रिक में दो द्विक अपनी ओर से मिलाये हैं, (त्रिक तीन वर्णों का पुंज है तथा द्विक दो वर्णों का)। इस प्रकार अन्तस्थ य र ल व इनके चिह्न स्वरूप प्रस्तुत किए गये है। ग्रन्थकार न और म का प्रयोग क्रमश दीर्घ और लघु वर्णों के लिये करता है, जिससे हमें पिंगल के नगण और मगण की याद आती है। इनका प्रयोग करते समय ग्रन्थकार के मन में पिंगल के नगण-मगण स्पष्ट रूप से विद्यमान है। पिंगल के सदृश ग्रन्थकार भी मात्रागणों में चतुर्मात्रा वर्ग का ही उल्लेख करता है। मात्रावृत्तों के लक्षण-प्रतिपादन के ही लिये चतुर्मात्रा वर्ग का प्रयोग होता है। संस्कृत में मात्रावृत्तों की संख्या बहुत थोड़ी है और इनमें चतुर्मात्रा-वर्ग ही लिये गये हैं, (द्वितीय अध्याय की प्रस्तावना देखें)। चतुर्मात्रा वर्ग लघु और दीर्घ वर्णों के विभिन्न प्रयोगों के आधार पर पाँच प्रकार का है। तीन प्रकार के तो त्रिक में आ जाते हैं। त्रिक के चिह्न भी इनके लिए प्रयुक्त होते हैं। शेष दो में से एक तो द्विक है, दूसरे का कोई विशेष चिन्ह नहीं है। ग्रन्थकार इसको दो चिह्नों द्वारा प्रस्तुत करता है।

भाष्यसहित रत्नमंजूषा के इस संस्करण को तैयार करने में ए और बी नामक दो पाण्डुलिपियों (गवर्नमेण्ट ओरियण्टल लायब्रेरी, मैसूर) का उपयोग किया गया है। ए का नं० ८७१ तथा बी का १०२५ है। दोनों कागज में भोज पत्र पर हुई लिखी हैं। प्रत्येक में २५ पत्र हैं, जिनका आकार क्रमश १०$\frac{1}{2}$ × २ और १३$\frac{1}{2}$ × १$\frac{1}{2}$ इंच है। दोनों के पृष्ठ क्रमश ९ और ७ पंक्ति के हैं और प्रत्येक लाइन में क्रमश. करीब ५२ और ७१ वर्ण हैं। दोनों पाण्डुलिपियाँ अपूर्ण है। ए में आठवें अध्याय का अधिकांश भाग है लेकिन बी. आठवें के १५ सूत्र तक ही है। ए भाष्य में सत्तरह (१७) सूत्र के बाद नहीं मिलता लेकिन अन्त में ११ श्लोक ऐसे मिलते हैं जो लेखक द्वारा उद्धृत-से प्रतीत होते हैं। इनमें स्वभावत ६ प्रत्यय पाये जाते हैं। ११ वें श्लोक में खण्डमेरु प्रस्तार के रचयिता पुन्नागचन्द्र का उल्लेख है। यह ग्रन्थ वर्णवृत्त विषयक है।

दोनों पाण्डुलिपियों में बहुधा लघु वर्णों के लिये दीर्घ वर्णों का प्रयोग किया गया है। विरले वक्र

दीर्घ वर्णों से लिये। दोनों ही में लघु वर्णों का भी प्रयोग समान रूप से है। इस त्रुटि की ओर मैंने समय समय पर ध्यान दिलाया है, साथ ही सही वर्ण भी दे दिये हैं। जहाँ जहाँ वर्ण छूटे हैं वहाँ वर्ण के पीछे मैंने प्लस (+) चिह्न देकर उसको ब्रेकेट मे रख दिया है।

भारतीय ज्ञानपीठ काशी तथा डा० हीरालाल जैन का मै बहुत आभारी हूँ कि उन्होंने मुझे इस दुर्लभ ग्रन्थ के सम्पादन का अवसर दिया।

१०/२ शास्त्री हॉल
बम्बई ७
२ जून, १९४९।

ह. दा वेलणकर

प्रकाशन-व्यय

३९०)	छपाई १० फार्म	१७५)	व्यवस्था
१५०)	कागज	१००)	चित्रकवर
२००)	जिल्द	२००)	भेंट आलोचना
१६०)	सम्पादन	१००)	विज्ञापन
१२५)	प्रूफ शोधन	४००)	कमीशन
		२०००)	

१००० प्रति छपी

मूल्य २)

रत्नमञ्जूषा with भाष्य

INTRODUCTION

Ratnamañjūṣā is a work on Sanskrit metres written by an old Jain author, whose name and personal history are wholly unknown. The work consists of Sutras and contains 8 Adhyayas like Pingala's Chandas Śāstra. The treatment also shows great similarity with and influence of Pingala's work. Yet in some respects Ratnamañjūṣā materially differs from Pignala. The author, being a Jain, naturally drops the Vedic metres. As a matter of fact, there is no indication in the Sutras themselves about the religion of their author. Yet the fact that their commentator is a Jain and that some of the metres defined in them are known only to the great Jain author Hemacandra, but not to Pinglā or Kedāra, makes it almost certain that the author of the Sutras was very likely a Jain. The name of the commentator is also unknown. He was a Jain as is clear from the introductory stanza. Most of the illustrations seem to have been composed by the commentator himself. About 40 out of a total of 85 illustrations contain the name of the metre artificially introduced by way of Mudra. This is a pretty clear indication of their being composed for the occasion itself. It is however possible that he may have quoted from other sources especially in those cases where the stanzas do not contain the name of the metre even when it was possible to introduce it. At 2. 4, he has quoted from the Śākuntala (I. 33) and at 6. 27 from Bhāsa's Pratijñāyaugandharāyana (II. 3). The other possible quotations may be 3. 7 (Karna Vaikartana), 4. 20. 2 (devān vitaḥ senāpatiḥ), 5. 5 (senāpatiputrī), 5. 20, 5. 28, 5. 34 (ketuman), 6. 12, 6. 21, 6. 29 (Vararuci announcing himself to Nanda through the doorkeeper), 7. 22, 7. 32 (praise of Skanda) and 7. 33. The following stanzas contains a clear reference to Jain religion — 2. 5, 15, 3. 10, 4. 9, 5. 8, 17, 29, 30, 6. 3, 6, 10, 13, 14, 7. 26, 27, 30. In 9 of these, the name of the metre is not introduced and they were probably not composed for the purpose of mere illustration. About 25 of the illustrations contain references to the

Sāmudrika and in most of these the name of the metre is introduced artificially, suggesting that they were probably composed by the commentator himself

The commentator has an occasion to refer to the author of the text on three or four occasians, but in no place does he mention his name On 4.1, he calls him an *ācārya* merely

As said above Ratnamañjūsā broadly follows the plan of Pingala and distributes the same material (except Vedic metres) over 8 Adhyayas as follows In the first Adhyaya, he explains the symbols and technical terms employed by him in this book In the second, he defines the Āryā (1-13) the Gīti (14) the Āryā Gīti (15), the Galitaka (16) and then the Upacitraka group of the Ardhasama Varna Vittas He devotes the third Adhyaya to the Vaitālīya (1-9) and the Mātrāsamaka groups of the Mātrā Vittas (10-17), giving at the end Gitvāryā, Visikhā and Cūlika (18-20) just like Pingala (4 48-52), but concluding the chapter with Nrtyagati and Natacarana, both of which are pure Mātrā Vrttas These last two are defined, so far as I know, only by the great Jain writer Hemacandra and not by any one else. In the fourth Adhyaya the three groups of the Visama Varna Vittas, namely the Udgatā (1-6), the Dāmāvārā or the Padacaturūrdhva (7-12) and the Anustubh Vaktra (11-20) groups are defined and illustrated. See the introductory note to Adhyaya IV. In Adhyayas five to seven, all the Varna Vrttas are defined and illustrated Like Pingala, our author begins with the Gāyatrī class whose metres contain 6 letters in each of their four lines, neglecting the metres of the lower classes i.e, Uktā, Atyuktā, Madhyā, Pratisthā and Supratisthā altogether See note on Adhyaya 1, Sūtras 20-24 At the beginning of the fifth Adhyaya, our author broadly divides all these Varna Vrttas under three heads namely Samāna, Pramāṇa and Vitana. The metres actually defined in Adhyayas 5 to 7 come under the third head i e, Vitāna As explained in my note on 5. 1-12, our author stands alone in thus dividing the Varna Vrttas of *all* the 21 classes. Pingala, and following him, all the other writers, including the Jaina Hemacandra, restrict this threefold division to metres of the Anustubh class alone and mention it on the first occasion when they treat of the metres of the Anustubh class i e, at the commencement of the Visama Vrttas which include the Anustubh Vaktra group Our author defines about 85

Varṇa Vṛttas belonging to the 21 classes from Gāyatrī to Utkṛti Out of these, not less than 21 are unknown to Piṅgala and Kedāra, but known only to the Jain tradition represented by Hemacandra. On the other hand, about 16 metres defined by Piṅgala are dropped in the Ratnamañjuṣā

But the most important point of difference between Piṅgala and Ratnamañjūṣā is the use of symbols. Piṅgala has devised 8 Trikas (groups of three letters) for the purpose of scanning a metrical line of the Varṇa Vṛttas He has given them eight symbols consisting of eight consonants Our author has retained the Trikas but changed their symbols completely. He has put forth a double system of symbols, one consisting of consonants and another of vowels alone He has also added 4 Dvikas (groups of two letters) to the 8 Trikas, giving them the symbols consisting of the 4 semivowels *ya, ra, la,* and *va* He employs the symbols *na,* and *ma,* (i. e consonants *n* and *m*) for short and long letters respectively, but here he has clearly the *nagana* and the *magana* of Piṅgla in his mind Like Piṅgla, he too mentions only the Caturmātra group among the Matra Ganas This group alone is employed in defining the Matra Vṛttas. Really speaking, the number of Mātrā Vṛttas in Sanskrit is very restricted and in them only the Caturmatra groups are prescribed as explained in my introductory note to the second Adhyaya The Caturmātra group is of five kinds according as short and long letters in different order are employed in them Three of them are already included in the Trikas whose symbols are also used for them Of the remaining two, one is a Dvika, while the other has no special symbol to represent it and is prescribed with the help of two symbols by our author

In preparing the edition of the Ratnamañjuṣā with the Bhāṣya two manuscripts called A and B have been used Both of them are from the Government Oriental Library, Mysore. The first i.e , A is No 871, while the second i e , B is No 1025 Both are written in the Kannaḍa characters and on palm leaves. A as well as B, both 25 folios each the size of which is respsctively 10¼ × 2 and 13¾ × 1½ inches. Their pagesr espectively contain 9 and 7 lines with about 52 and 71 letters in a line Both the mss. are incomplete. A contains the greater part of the eighth chapter while B contains it only upto the end of the 15th Sutra of it. A breaks off in the Bhāsya on the 17th Sūtra but gives at the end some 11

stanzas which look like a quotation from some other work written out by the scribe himself They naturally bear on some of the 6 Pratyayas. In st. 11 an author called Punnāgacandra is mentioned as the author of the Khaṇḍameru Prastāra of the Varṇa Vṛttas.

Both the manuscripts agree in frequently writing short letters for long and rarely also long letters for short ones. The mistakes are generally obvious. Yet I have indicated all of them as they are, in the following edition putting (within brackets) the correct letter or letters, immediately after the wrong ones When a letter is dropped, it is indicated by means of a plus + sign placed behind the letter which is then put within the brackets.

I feel greatly obliged to the Bhāratīya Jñānapītha, Kashi and Dr. H L Jain of Nagpur for giving me an oppertunity of editing this rare work on Sanskrit metres.

10/2 Shastri Hall, Bombay 7
2nd June, 1949.

H D Velankar

नमः सिद्धेभ्यः ।

सभाष्या रत्नमञ्जूषा

[प्रथमोऽध्यायः]

यो भूतभव्यभवदर्थयथार्थवेदी देवासुरेन्द्रमुकुटार्चितपादपद्मः ।
विद्यानदीप्रभवपर्वत एक एव तं क्षीणकल्मषगणं प्रणमामि वीरम् ॥

मायाका ॥१॥

माया का इत्यस्य सर्वगुरुत्रिकस्य आकारः संज्ञा भवति ककारो वा 'स्वरोऽन्त्यस्तदन्तस्य व्यञ्जनं च' इति वचनात् । 'सुचिमुखी पा' (५ ७) इत्याकारस्य, 'भद्रविराड् यीरे कीरे' (२-२०) इति ककारस्य । अत्रैव माया इति गुरुद्वयस्य यकारः संज्ञा भवति, व्यञ्जनं च तदन्तस्येति वचनादेव । यीषृनीति । पुनश्च अत्रैव मा इति गुर्वक्षरस्य मकारः संज्ञा भवति, व्यञ्जनं च तदन्तस्येति वचनादेव । भ इति अक्षरे एकस्मिन्प्याद्यन्तवद्भावात् । संयोगे नपिमिति । अत्राह– नन्वाकारादयस्तेषामेवाक्षराणां संज्ञा, यथा वृद्धिरादैच् इति वृद्धिसंज्ञा तेषामेवाक्षराणाम् इति, न; तद्रूपसंज्ञाकरणे प्रयोजनाभावात् तन्मात्राणां यान्यत्र तेषु त्रिकेष्वक्षराण्युपदिष्टा (+नि) तेषां संज्ञाकरणानि प्रयोजनमिति तन्मात्राणां सर्वासां संज्ञास्ताः प्रत्ययगन्तव्याः । अथवा 'शालिनी मात्स्ये दि' (+इ) त्यत्र (५ ३५) छेदवचनं ज्ञापकमन्येषाम् इति तन्मात्राणां संज्ञा इति । यदि तेषामेव संज्ञा माया का इति छेदवचनमनर्थकं भवति, तस्मात्तन्मात्रासंज्ञाकरणमेव[1] ॥

नरौ चे ॥२॥

नरौ चे इत्यादिलघुत्रिकस्य एकारः संज्ञा भवति चकारो वा । 'तनुमध्या शे' (५-५) इत्येकारः । 'चित्रलेखा (+ नी) चा' (५-८) इति चकारः । अत्रैव नरौ इत्यादिलघुत्रिकस्य रकारः संज्ञा भवति । 'भद्रविराड् यीरे कीरे' (२-२०) इति । पुनश्चात्रैव न इति लघ्वक्षरस्य नकारः संज्ञा । संयोगे नपिमिति (१-११) ॥

---

1 तन्मात्राकरणमेव A.

लालितौ ॥३॥

लालिताविति मध्यलघुत्रिकस्य औकारः संज्ञा तकारो वा । 'चपला गर्यात्तेनौ' (२-७७) । पुनश्चात्रैव लाचि (ली) त्यन्तलघुद्विकस्य लकारः संज्ञा । 'उपचित्रक पि(पी)वौ लुपे' इति (२-१७) ॥

विवपी ॥४॥

विवपी इत्यन्तगुरुत्रिकस्य ईकारः संज्ञा पकारो वा । पुनश्चात्रैव विव इति लघुद्विकस्य वकारः संज्ञा । 'उपचित्रं(त्र+क) पि(पी)वौ लुपे (२. १७) इति ॥

शाशाश ॥५॥

शाशाश इत्यन्तलघुत्रिकस्य अकारः संज्ञा शकारो वा । 'इन्द्रवज्रा शारे' (५-२७) इति ॥

षिषेषु ॥६॥

षिषेष्विति मध्यगुरुत्रिकस्य उकारः संज्ञा षकारो वा । 'उपचित्रक पि(पी)वौ लुपे' (२-१७) इति ॥

सस्सृ ॥७॥

सस्सृ इत्यादिगुरुत्रिकस्य ऋकारः संज्ञा सकारो वा । 'हरिणीप्लुता बृसा हृसाविति' (२ २२) ॥

हहहि ॥८॥

हहहि इति सर्वलघुत्रिकस्य इकारः संज्ञा हकारो वा न(+हह)हि इति ॥

अष्टौ स्वरास्त्रिकाणामष्टौ च व्यञ्जनानि संज्ञाः स्युः ।
द्विकसंज्ञास्तु यरलवा गुरुलघुसंज्ञौ मनौ ज्ञेयौ ॥

स्वरोऽन्त्यस्तदन्तस्य ॥९॥

यस्य त्रिकस्य यः स्वरोऽन्त्यः स तस्य[1] संज्ञा भवति । तथा चैवोदाहृतम् । अन्त्यग्रहणात् आदिमध्यस्थः स्वरा अक्षराणां द्विकानां वा संज्ञा न भवति । तस्मात् आकारादिः[2] त्रिकस्य प्रत्यायको भवति ॥

व्यञ्जनं च ॥१०॥

यस्मिन्नक्षरे यद् व्यञ्जनं वर्तते तच्च तदक्षरान्त्य(न्त)स्य त्रिकस्य द्विकस्य अक्षरस्य वा प्रत्यायकं भवति, तथा चैवोदाहृतम् । अन्त्यग्रहणं वर्तते वा न वा ? किं जात(तम्) । यदि वर्तते; अनन्त्यत्वात् द्विकस्य अक्षरस्य ग्रहणं न सम्भवति । अथ निवृत्तम् ; 'इन्द्रवज्रा शारे' (५-२५) इत्यत्रायं शकारः त्रिकस्य आद्यो मध्यमोऽन्त्यो वा इति न ज्ञायते इति । भवतु वर्तते । ननु च उक्तमनन्त्यत्वात् द्विकस्य अक्षरस्य वा ग्रहणं न सम्भवति इति । नैष दोषः । वचनाद्भवति । कथम् ? यदाद्यं मध्यमं वा व्यञ्जनं गृहीत्वा संज्ञाभावेन संव्यवहरति । 'संयोगे नपिम्' (१-११) 'यीपृनि' (१ २६) (+इ) ति, तज्ज्ञापयति अनन्त्यमपि व्यञ्जनं क्वचित् तदन्तस्य संज्ञा भवतीति । अथवा भवतु निवृत्तमिति । ननु चोक्तं इन्द्रवज्रा शारे इति शकारः त्रिकस्याद्यो मध्यमोऽन्त्यो वा इति न ज्ञायते इति । तत्र को दोषः ? यद्याद्यः गुरोरेकस्य ग्रहणं भवति । अथ मध्यमो गुरुद्वयस्य । नैष दोषः । यद्येको गुरुद्वयं च इष्टमभविष्यत् असन्देहकम् अकारं वा यकारं

---

१ तदन्तस्य B २ आकारादे A.

वा अकरिष्यत् । तदकरणाद् वयं प्रतिजानीमहे अन्त्य एव नान्यो (+न) मध्यम इति । 'अथवा व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्न हि संदेहादलक्षणम्' इति लक्षणसद्भावादन्त्य एव इति व्याख्यास्यामः ॥

संयोगे नपि म् ॥११॥

द्वयोर्बहूनां वा समागमः संयोगः, तस्मिन् परतः पूर्वो नपि लघुरपि म् भवति गुरुर्भवतीत्यर्थः ॥

यत्नस्तुमहान् कार्यः संसारमहार्णवान्तिगमनाय ।
इन्द्रियगजप्रवारणपरेण विदुषा सदा भाव्यम् ॥

अपिशब्दात् संयोगे परतः कदाचिल्लघुरेव भवति । तत्कथम् ?

धनं प्रदानेन श्रुतेन कर्णौ हस्तेन वाक्यं प्रशमेन कायम् ।
शौचेन वृत्त दिवस हितेन नियोज्य यो जीवति जीवितः स ॥

अत्र श्रु इत्येतस्मिन् परतः पूर्वो नकारो लघुरेव भवति । अनेनैव अपिशब्देन अन्येऽपि विकल्पाः कल्प्याः । एको गुरुः द्वौ लघु(घू) भवतः इत्येवमादयः । पादेत्यत्र (?) द्वौ मौ चत्वारो नो भवन्ति ततो नित्याख्या लभन्ते ॥

अन्ते च ॥१२॥

नपि म् इत्यनुवर्तते । पादान्ते यो लघुः स गुरुर्भवति ॥

नार्यायुक्पादे ॥१३॥

आर्याया. अयुक्पादयोरन्ते वर्तमानो लघुर्गुरुर्न भवति, लघुरेव भवति । एतयोरपि सूत्रयोः स एव दृष्टान्तः ॥

संख्या ददादिः ॥१४॥

एकादिकायाः संख्याया ददा इत्येवमादीनि संज्ञा भवन्ति ॥

पूरणे ण् ॥१५॥

पूरणं तावतिथमित्यर्थः । तत्कथं दूण् ॥

न वा ॥१६॥

णकारेण विना दादीनि वा संख्यापूरणवाचीनि भवन्ति । तत्कथ 'शालिनि(नी) माहवे द्वि' (५-१५) ॥

पादः ॥१७॥

वृत्तस्य चतुर्थोऽशो(शः) पाद इति शेषः ॥

छेदः ॥१८॥

श्रुतिसुभगास्थितिः ॥

पदे से ॥१९॥

सन्धिविकारे स्यगिमध्ये ॥

पादे गायत्री दृअक्षरा ॥२०॥

यस्य छन्दसः पादे षडक्षराणि भवन्ति सा गायत्री नाम । उत्तरत्रोदाहरिष्यामः । असंहिताकरणम सन्देहार्थम् ॥

दघ (द) वृद्धाः उष्णिगनुष्टुब्बृहतीपङ्क्तित्रिष्टुभः ॥२१॥

ददवृद्धाः एकैकाधिका इत्यर्थः । येषां छन्दसां गायत्रीपादात् एकैकाक्षराधिकपादाः ॥

जगतीशक्कर्यष्टिधृतयोऽन्तेश्च ॥२२॥

जगती अतिजगती शक्करी अतिशक्करी अष्टिः अत्यष्टि धृति. अतिधृतिः इत्येताः सज्ञा भवन्ति । कथमिदं विज्ञायते जगती अतिजगती शक्करी अतिशक्करी अष्टिः अत्यष्टिः धृतिः अतिधृतिः एव(वं) क्रमो भवति न पुनः जगतीशक्कर्यष्टिधृतिअतिजगती(+अति)शक्करीअत्यष्टिअतिधृति इति ? उच्यते । धृतिरित्यधिकृत्य 'कुसुमितलतावेल्लिता मालिनये' (७ २) इति वचनात् । कथं तेन एतदुपलभ्यते । यदि पश्चादुक्तः क्रम· स्यात् धृतिः पञ्चदशाक्षरा स्यात् । धृतौ 'मालिनये' इति अष्टादशाक्षरैरविन्यासलक्ष(+ण) वचनमयुक्तं स्यात् । ततोऽवगम्यते पूर्वोक्तं[2] एव क्रम इति ॥

कृतिः ॥२३॥

कृतिरिति अतिधृतिपादात् एकाक्षराधिकपादस्य कृतिर्नाम भवति ॥

प्राविसमभ्युदश्च ॥२४॥

कृतिपादात् एकैकाक्षराधिकपादाः प्रकृतिः आकृति विकृति. संकृति· अभिकृति. उत्कृति· इत्येव सज्ञाः भवन्ति ॥

दि(दी) नो ग् ॥२५॥

दि(दी) इति चतस्र इत्यर्थः । न इति मात्रा इत्यर्थ. । चतसृणां मात्राणा ग् इत्येषा सज्ञा भवति ॥

यीषृनि ॥२६॥

माया, विवपी, पिपेषु, सस्वस्, नहहहि, इत्येव गुरुभूताभिः पृथग्भूताभिश्च मात्राभिः पञ्चविधो गो भवन्ति ॥

इति रत्नमञ्जूषायां छन्दोविचित्या भाष्यतः प्रथमोऽध्यायः ॥

१–क्षरस्य विन्यास–A. २ पूर्वोऽत्र A'.

द्वितीयोऽध्यायः

अर्धे ॥१॥

अर्धे इत्यधिकृत्य । इत उत्तरं यल्लक्षणमभिधास्यामः तदर्धे इति वेदितव्यम् । तत्कथम् ? आर्या-गोऽर्धं च । अर्धे इत्युपस्थितं भवति । आ कुतोऽयमधिकारः । आ अध्यायपरिसमाप्तेः ॥

आर्या ग्लोऽर्धं च ॥२॥

आर्या नाम सा जातिर्भवति यस्या अर्धे ग्लः गर्धं च भवति । कथम् ?

नवभिर्द्वारैरशुचिस्राविण्यां विविधदुःखकारिण्याम् ।
नार्यां नार्यो रमते नार्यो रमते स्तनार्याणाम् ॥

युगु ॥३॥

तस्या आर्यायाः पूर्वार्धापरार्धयोः उकार(रः) मध्यगुरुत्रिकस्समगण एव भवति न विषमगणः ॥

द्रूण् ॥४॥

षष्ठो गणः उकारः मध्यगुरुत्रिकः एव भवति नान्यः ॥

गच्छति पुरः शरीरं धावति पश्चादसंस्तुतं चेतः ।
चीनांशुकमिव केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य ॥

नि चेद् द्राण् पदादिः ॥५॥

षष्ठो गणो यदि (+न)हृहि भवति तदा द्वितीयो लघुः पदादिः भवति ॥

संसारेऽसारत्वं परीक्ष्य बहुधापि विपुलमतिभिरिह ।
मुनिचरिते पथ्यात्मा नेयः परमं पदमिच्छद्भिः ॥

पाञ्चयोगिकोऽयमुदाहरणश्लोकः ॥

दण् दण् ॥६॥

नि जे(चे)दित्यनुवर्तते, पदादिरिति च । यदि सप्तम्या (मो) गणः सर्वलधुर्भवति तदा प्रथमलघुः पदादिर्भवति । दण् दण् नि जे(चे)द्राण् पदादि' इत्येव द्वयपूर्वस्य (इत्येतद् द्वयं पूर्वस्य) एव लक्षणं परार्धे 'द्रुण् नेव द्रूण्' इति वचनात् ॥

परेपि अयं विशेषोऽभिधास्यते ।

परार्धे द्रुण् ॥७॥

यदि परार्धे पञ्चमो गणः सर्वलघुर्भवति तदापि प्रथमलघु(घुः) पादादिर्भवति ॥

नेव द्रूण् ॥८॥

अपरार्धे षष्ठो गणः एक एव लघुर्भवति ॥

द्वितुक्पादा पथ्या ॥९॥

द्वि(द्वी)ति त्रयः गिति गणाः। यस्याः आर्यायाः अयुक्पादः त्रिगणो भवति सा पथ्या नाम ॥९॥

विपुलान्या ॥१०॥

यस्या आर्याया अयुक्पादः त्रिगणो न भवति, भवति सा विपुला नाम ॥

विपुलागमचौलमतीनामपि पूर्वकृतकर्मवश्यानाम् ।
न भिषेश्वता समुपयान्ति प्रबला इन्द्रियरथाश्वाः ॥

चपला गर्धात् ते नौ ॥११॥

यस्या आर्याया आदितोऽर्धगणात् परतः 'लान्तौ, नरौचे, न, लान्तौ,' इत्येतत् लक्षणं भवति भवति चपला नाम ॥

रोगा बहुप्रकाराः सदा तुदन्ति चपलायते मूर्तिः ।
मरणं च भावि नित्यं किमत्र रम्यं जगति शिष्टम् ॥

मुखे तत्पूर्वा ॥१२॥

पूर्वार्धे इत्यर्थ.। यदि पूर्वार्धे एतल्लक्षण भवति, भवति मुखचपला नाम। तद्यथा—

प्रस्वेदबिन्दुचित्र विमुक्तबन्धनसुमालिवृतकेशाम् ।
शंसति मुख तरुण्याः वृत्तामपि कन्दुकक्रीडाम् ॥

जघने च ॥१३॥

जघन इत्यपरार्ध इत्यर्थः। यद्यपि अपरार्धे एव एतल्लक्षणं भवति जघनचपला नाम ॥

कर्णनिहित(तः) प्रियङ्गुः क्रिमिरागैः पदि च पिण्डितो वर्णः ।
वेणीकृताश्च केशा विभान्ति बालातपे नार्यः ॥

पूर्णश्चेद् द्रुण् गीतिः ॥१४॥

परार्धे 'नेव द्र(द्रु)ण्' इत्युक्त सा तथा अभूत्वा यदि चतुर्मात्रा भवन्ति, भवति गीतिर्नाम ॥

देवेन्द्रोऽपि न दुःखत्यागी तिर्यङ्मनुष्यनरकेषु ।
का तत्र जन्तुषु कथा सततहितविविधदुःखभावेषु ॥

यदा पूर्णा(र्णत्व)दा 'द्रुण्' 'नि जे(चे)द्राण् पदादि' रित्येतद्द्वयमुपतिष्ठते। ततः षष्ठः विपेषु इति वा नहहहि इति वा भवति। यदा नहहहि भवति तदा द्वितीयः पदादिर्भवति ॥

द्र(द्रु)ण् चार्यागीतिः ॥१५॥

यद्यष्टमो गणः पूर्णो भवति, भवति आर्यागीतिर्नाम ॥

जगति जरारुङ्मरणाद्भीता जिनपुङ्गव भवन्त मनुजाः ।
तद्गुणविशेषवशगा आर्या गीतिभिरभिष्टुवन्ति यमनिशम् ॥

१–बन्धनकुसुमालिवृत्त AB. २–A Drops these three words;

ललितकं प्रतिपादं दुमधं च ॥१६॥

चतुर्षु पादेषु पञ्चगणा मगणार्धं च भवति, भवति ललितकं नाम ॥

न स्मरति किं त्वदीरितश्चरमातुरतानाम् । अटवीषु चोग(ग्र)केसरिकरभा नुरतानाम् ।
अधवान्तकस्य सुष्ठ्या निद्राकदन्तस्य । प्राप्ता बोधाय धारणिया वहन्तस्य ॥

इत उत्तरं आ अध्यायपरिसमाप्तेः अर्धसमानि भवन्ति । पूर्वार्धे परार्धे [1]तुल्यविन्यासत्वात् ॥

उपचित्रकं पि(पी)वौ लुषे ॥१७॥

यद्यर्धे विबपी विबपी विव कालितौ, कालि पिषेषु पिषेषु नवोचे इत्येतल्लक्षणं भवति, भवत्युपचित्रकं नाम ॥

उपचित्रकमक्षयचन्दनैः काञ्चनविद्रुमरत्नवरैश्च ।
कुलमाशु दरिद्रतया प्लुतं दैन्यमुपैति दिवेव शशाङ्कः ॥

द्रुतमध्या लुषे हुषे ॥१८॥

यदि लुषे हुषे (+इ) ति लक्षणं भवति, भवति द्रुतमध्या नाम ॥

भोगवती युवती द्रुतमध्या । वलिपलितैर्विकृतेति जरेयम् ।
एत तपोवनमाशु मनुष्याः । विगतजर पदमाप्तुमुदात्तम् ॥

वेगवती नुषे लुषे ॥१९॥

यदि नुषे लुषे इति लक्षणं भवति, भवति वेगवती नाम ॥

वलिभिः पलितैश्च विकीर्णा शीघ्रमुपैति जरा मरणाय ।
सितफेनतरङ्गलताढ्या सन्ततवेगवतीह नदीव ॥

भद्रविराड् यि(यी)रे कि(की)रे ॥२०॥

यदि यि(यी)रे कि(की)रे इति लक्षणं भवति, भवति भद्रविराड् नाम ॥

केयूरमुख्यैर्विभूषितस्रक् तेजो भद्रविराण्णरेड् शु(सु)रेड् वा ।
भूत्वापि स एव याति पापात् चाण्डालश्वशृगालसूकरत्वम् ॥

केतुमती नुसे लुसे ॥२१॥

यदि नुसे लुसे इति लक्षणं भवति, भवति केतुमती नाम ॥

समपार्थिवप्रहितरोगः केतुमतीव धर्म किल हन्ति ।
अभितो हिताहितमनुष्याः एत तपोदमप्रवणयुक्ताः ॥

आख्यानिका श्रे षरे ॥२२॥

यदि श्रे षरे इति लक्षणं भवति, भवति आख्यानिका नाम ।

महाद्युमैश्वर्यसमन्वितोऽहं ज्ञानान्वितोऽहं प्रियदर्शनोऽहम् ।
इति प्रमोदी मदमेति मर्त्यः तत्र त्वपश्यन्विपरीतभावम् ।

1—पदार्थतुल्य B.

हरिणीप्लुता सुसा(सौ) सुसा(सौ) ॥२३॥

यदि सुसा(सौ) सुसा(सौ) इति लक्षणं भवति, भवति हरिणीप्लुता नाम ।

कृतकर्मविपाकवशात्नृणां निपतति क्वचिदेव सुखं किमपि ।
कमलालययोषिदपि क्वचित् न च चिरं रमते हरिणीप्लुता ॥

मालभारिणी सुते यृते ॥२४॥

यदि सुते यृते इति लक्षण भवति, भवति मालभारिणी नाम ।

घनमालगृहे तडित्प्रदीपे पवनैर्गन्धवहैः कृतानुयात्रम् ।
विनिमीलितसूर्यचन्द्रनेत्रं इवसितीवाम्बरमम्बुभारखिन्नम् ॥

अपरवक्त्रं विधौ हुधौ ॥२५॥

यदि विधौ हुधौ इति लक्षणं भवति, भवति अपरवक्त्रं नाम ।

स्वशिशुमपरवक्त्रदर्शनं विगतदयोऽतिविलालसलालसः ।
कथमिव पिशिताशिनां नृणां भवति दया मृगमत्स्यपक्षिषु ॥

पुष्पिताग्रं हिते हुन्ते ॥२६॥

यदि हिते हुन्ते इति लक्षणं भवति, भवति पुष्पिताग्रं नाम ।

भ्रमरपरभृतोपगीतजुष्टं किसलयभूषितचारुपुष्पिताग्रम् ।
उपवनमिव दृष्टपुष्टशोभं कुलमुपयाति समृद्धमाशु नाशम् ॥

यमवती तुस्नौ रुत्रे ॥२७॥

यदि तुस्नौ रुत्रे इति लक्षण भवति, भवति यमवती नाम ।

मानवा अवश्यभाविनाविमौ कथ जरायमौ वतीव दुःसहौ समीक्ष्य ।
द्वेषमोहरागरोषपीडितास्तपो वन प्रयान्तुमत्र तत सन्त्वन्ते ॥

शिखा वा(वो) दोप् वो दौप् ॥२८॥

यदि विव त्रयोदशकृत्वः सकृद्विवपि(पी) पुनश्चतुर्दश कृत्वो विव सकृद्विवपि(गी) लक्षण भवति, भवति शिखा नाम ।

नरपतिविरहितनरजगदिव सुरपतिविरहितमिव च सुरजगत् ।
बलपतिविरहितबलमिव च कुलमिव च कुलधरवरपुरुषविरहितम् ।
रजनिकरविरहितगगनमिव सलिलरुहविरहितमिव न च सरः ।
भवति हि कुलबलविभवविरहितकरेण विरहितनिरवधिकमिव भवनम् ॥

इति रत्नमञ्जूषिकायां छन्दोविचित्या भाष्यतो द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

१—यथा A.

तृतीयोऽध्यायः

पादे ॥१॥

पादे इत्यधिकारः । इत उत्तरं यल्लक्षणमभिधास्यामः तत्पादे इति वेदितव्यम् । यथा [1]'वैतालीयमन्ते लौ ।' पादे इत्युपस्थितं भवति ॥

वैतालीयमन्ते लौ ॥२॥

यदि चतुर्षु पादेषु अन्ते अवसाने लवि लकियाविति लक्षणं भवति, भवति वैतालीयं नाम ॥

आपातलिका ले ॥३॥

यदि ले इति लक्षणं स्यात्, भवति आपातलिका नाम ॥

सूक्ष्माकुञ्चितघनकेशी शारदहंसकलस्वनवाणी ।
आपातलिका विधिरेषा नृपतिकुलेषु विशेषमुपैति ॥

औपच्छन्दसिकं ते ॥४॥

यदि ते इति लक्षणं स्यात्, भवति औपच्छन्दसिकं नाम ॥

पादैः श्लिष्टैर्घनाकुलि(ली)कैः सुस्निग्धोपचितैः सुगूढगुल्फैः ।
आताम्रनखैः समुन्नताग्रैः औपच्छन्दसिकं वनं लभन्ते ॥

आह—वैतालीयापातलिकयोः पादान्तस्य अष्टमात्रस्य औपच्छन्दसिकस्य दशमात्रस्य च विन्यास-क्रमोऽभिहितः । शेषः कीदृग्विध इत्यत्रोच्यते—

शेषे(ऽ)युजोद्वन्द्वं द्वनः ॥५॥

औपच्छन्दसिकान्तानामयुक्पादयोरभिहितलक्षणशेषे षण्मात्रा भवन्ति मिश्रितामिश्रिताः । तत्र मिश्रिता अव(वि)श्लिष्टलघवः द्वन्द्वं भवन्ति मिथुनीभूताः । युग्माः समा इत्यर्थः । कथं द्वादीद् इति न पुनर्द्विदो(द्व) इति । तथा च एव उदाहृतम् ॥

युज्योद्नः (युजोद्नः+व्हि न) ॥६॥

युक्पादशेषे तेनैव क्रमेण अष्टमात्रा भवन्ति । विहीने[2](व्हिने)ति प्रतिषेधः । युक्पादशेषे विव द्वहि द्वहि इति न्यासो न भवति ॥

---

[1] आपातलिका A. [2]—न विहीनेति B.

दिञ(णो) यु प्राच्यवृत्तिः ॥७॥

यदि तृतीयमात्रापरो युक्पादशेषे गुरुर्भवति परं च यदि वैतालीयलक्षणं भवति, भवति प्राच्यवृत्तिर्नाम ॥

विपुलाक्षिभुजः स्तमान्तरः स्त्रिकृष्टदशनान्तराकृतिः ।
कर्णो वैकर्तनो नरः प्राच्यवृत्तिरवनीश्वरो भवति ॥

दणोऽयुज्यो(ओ)रुदीच्यवृत्तिः ॥८॥

मित्यनुवर्तते । यदि अयुक्पादशेषे प्रथममात्रापरो गुरुर्भवति एवं च यदि भवति वैतालीयलक्षण, भवति उदीच्यवृत्तिर्नाम ॥

विशालजघना महोदराः हरिणाक्षाः कलमन्दभाषिणः ।
नरां द्रुतिसमिमाननाः सदयाक्षि(शाः स्त्री) भिरुदीच्यवृत्तिभिः ॥

उभयं प्रवृत्तकम् ॥९॥

अयुक्पादशेषे प्रथममात्रापरः युक्पादशेषे तृतीयमात्रापरश्च गुरुर्भवति परं वैतालीयलक्षण भवति, भवति प्रवृत्तकं नाम ॥

प्रलम्बहनुशङ्कुपिण्डितम् सुग्नवक्रकपितुल्यनासिकम् ।
मुखं विषमदन्तलोचनं पापकर्मणि सदा प्रवृत्तकम् ॥

मात्रासमकं दि(दी) गः ॥१०॥

पादे इत्यधिकारोऽनुवर्तते । यदि चत्वारो गो भवन्ति, भवति मात्रासमकं नाम । उत्तरत्रोदाहरिष्यामः॥

न दणु ॥११॥

तस्य मात्रासमकस्य प्रथमगणः विषेपु न भवति ॥

दिणि (णी) ॥१२॥

तस्य मात्रासमकस्य तृतीयगणो विषमी एव भवति ।

मात्रा सुसुतान्वियुतान्[1] केचित् मात्रासमकान्वियुतान् केचित् ।
मर्त्या घ्नन्ति हि पिशिते नीचाः नित्यं यान्ति हि नरकं पापाः ॥

उपचित्रा यृ ॥१३॥

यदि तृतीयगणो माया इति सस्यस इति वा भवति शेषं च मात्रासमकलक्षणं भवति, भवति उपचित्रा नाम ॥

---

१ सुसुताद्वियुतान् B.

चित्रानामुपचित्रार्थानां तेषा मात्र्यादीन्मुपरबीवन् ।
क्लेशं सततं प्रासीत्य (प ?)बुधो नार्थं तान्यपि याति तथापि ॥

वानवासिका च्चि ॥१४॥

यदि तृतीयगणः षिपेषु इति वा नहइहि वा भवति, भवति वानवासिका नाम ॥

विश्लोको दाण् च्चि ॥१५॥

यदि द्वितीयगणः षिपेषु इति वा नहइहिं इति भवति, भवति विश्लोको नाम ॥

कुज्ञानमोहितात्मिष(न्धी)भूतः क्षीणात्मदि(दी)नविश्लोकानाम् ।
सततत्तु ना यदेषां चाप्ते लोके मतिं न धत्ते धर्मे ॥

चित्रा पुनि च दिण् ॥१६॥

यदि द्वितीयगण. षिपेषु इति वा नहइहि इति वा तृतीयगणश्च विवपी इति (+वा) षिपेषु इति वा नहइहि इति वा भवति, भवति चित्रा नाम ॥

कुज्ञानदष्टितमोनिहन्त्री नानाप्रमाणनयवचित्रा ।
वाणी जिनवरकथिता सुदामा(भा)त्यम्बरेऽर्कबचिर(रि)व चित्रा ॥

पादकुलकं मिश्रम् ॥१७॥

यानि मात्रासमकादीना निर्दिष्टानि लक्षणानि तेषु द्वे वा त्रीणि वा चत्वारि वा यदि एकस्मिन् श्लोके दृश्यन्ते स पादकुलकसंज्ञो भवति ॥

पल्लवकुसुमफलाशाविभ्यित्रं वृक्ष बहुपुष्पफलाकुलकम् ।
दृष्ट्वा पुनरपि विरहितशोभं नैश्वर्यमदमिह च कुरुतार्याः ॥

गोस्यार्या नां नामिति ॥१८॥

मात्राणामित्यर्थः । चतुर्गणपादा विरहितगुर्वक्षरा गोस्यार्या नाम ।

दिविजयतिरिति च मनुजयतिरिति च । सुरमुकुटमहितदिविजयतिरिति च ।
कुबलधृतिमतिभनलहित इति च । यम इति न च परिहरति च हरति च॥

विक्षिप्तार्थे मः ॥१९॥

यस्य श्लोकस्य चतुर्णां पादस्या (दाः अ) र्धे गुरूणि अर्धे लघूनि भवन्ति, भवति विक्षिप्ता नाम ॥

सिंहस्कन्धः पीनौ बाहू मत्तश्यामः कम्बुग्रीवः ।
मत्तगजगमनरुचिरहासविमल-मधुरवचनधरनरः इह जयति ॥

चूलिका शिखार्धम् ॥२०॥

शिखा वा(बो) दोव् वो दौविस्युक्तम् । एतच्छिखाया अर्धस्य लक्षण यदि तेनैव एकः श्लोको भवति, भवति चूलिका नाम ॥

वरहयगजरथनरपतिजनगृह-सुतमणिकनकरजतसुखरम् ।
न च समनुभवति यमपुरुषसमनु चरविरहितमनु चरति सुचरितम् ॥

नृत्यगतिर्दु ॥२१॥

ग इत्यनुवर्तते । यस्या जाते(तेः) पादशः पञ्च गणा भवन्ति, भवति सा नृत्यगतिर्नाम ॥

मर्त्येषु कदाचित्तिर्यक्षु कदाचित् स्वर्गेषु कदाचिच्छ्वभ्रेषु कदाचित् ।
कृत्वा किल जननं भुत्वा बहुरूप नृत्यगतिं जीवो वर्तयति च नित्यम् ॥

मेवान्त्यः तस्यापि ॥२२॥

नृत्यगतिजातेरन्त्यो गणो मेव गुरुरेव भवति । तथा चैवोदाहृतम् ॥

दिण्च ॥२३॥

तृतीयगणोपि मेव भवति ॥

छेदः ॥२४॥

तस्मिन् तृतीयगणे छेदो भवति ॥

नटचरणं दि ॥२५॥

अत्रापि ग इत्येव । यस्या जाते. पादशः त्रयो गणा भवन्ति, भवति नटचरण नाम । उत्तरत्र वक्ष्यमाणेनापि लक्षणेन युक्तम् ॥

नटचरणादपि चपला चलतीय युवतेति ।
युवताया मदमार्याः कुरुत न मो(भोः) कुरुत तप. ॥

मेवान्त्यः ॥२६॥

तस्या नटचरणजाते. अन्त्यो गणो मेव भवति ॥

द्राण्च ॥२७॥

द्वितीयगणोपि मेव भवति ॥

छेदः ॥२८॥

तस्या नटचरणजातेः पादशः द्वितीयगणे छेदो भवति ॥

इति रत्नमञ्जूषाया छन्दोविचित्या भाष्यतः तृतीयोऽध्यायः ॥

चतुर्थोऽध्यायः

उद्गतं पुनु, निषौ सिरि (री) पुपुम् ॥१॥

यदि प्रथमे पादे पुनु; द्वितीये निषौ; तृतीये सिरि (री) चतुर्थे पुपुम् इति न्यासो भवति; भवति उद्गत नाम ॥

नर उद्गतं कुलमुपेत्य विपुलमतिसत्यसयुतः ।
कश्चिदसुखमतुल लभते कृतकर्मपाकविकृते. ततो हित ॥

आह—इह पाद इत्यनुवर्तते वा न वा । किं जातः (तम्) । यदि वर्तते पुनुर्निषौ सिरि (री) पुपुम् इति एतत्पादस्य एव लक्षणम् । चतुर्गुणः श्लोकः स्यात् । अथनिवृत्तकं दिण् तिमि इति अनिर्देशः स्यात् । भवति, अनुवर्तते इति । ननु च उक्त पादस्यैव लक्षण भवति चतुर्गुण चतुर्गुण. श्लोकः स्यात् इति । दिण् तिमिति तृतीयपादस्य विन्यासक्रमाभिधानात्सर्वस्य, इति विज्ञायते । पादग्रहणं प्रत्येक परिसमाप्यते पादे पुनु, पादे निषौ, पादेसिरि (री) पादे पुपुमिति । अथवा यस्य आचार्यस्य शीलं लक्ष्येत नियतेषु द्वाभ्यामक्षराभ्याम् एकस्य पादस्य विन्यासलक्षण ब्रवीति इति 'उपचित्रकं पिवौ लुपं इति' (२ २७) तत्रापि द्वे द्वे अक्षरे एकैकस्य पादस्य विन्यासलक्षणमिति ग्राह्यम् ॥

दिण् तिमि(मी) सौरभकम् ॥२॥

यदि तृतीयपादे तिमि(मी) इति न्यासो भवति शेषेषु पादेषु उद्गतवद्भवति, भवति सौरभक नाम ॥

परिमण्डलाक्षिवदनश्च कुटिलतनुदीर्घनासिकः ।
प्रस्थितं च यदि सौरभक गणमृत्युरेव हि भवेत् चमूपतिः ॥

हिपि (पी) ललिता ॥३॥

यदि तृतीयपादे हिपी इति न्यासो भवति शेषेषु पादेषु उद्गतवद्भवति भवति ललिता नाम ॥

ललितानि सुस्मितपदूनि मधुरवचनानि योषिताम् ।
जननमरणजलधौ शरणं नहि ते. सु (तेषु) रज्यत हि भो हितार्थिन ॥

उपस्थितप्रचुपितं क्वौषे, बूप्रे, विनि (नी) हिह्नि (ह्री) म् ॥४॥

यदि प्रथमे पादे क्वौषे, द्वितीये बूप्रे, तृतीये विनि (नी), तुरीये ह्नि(ह्री) म् इति विन्यासो भवति, भवति उपस्थितप्रचुपितं नाम ॥

आस्यभा न अयजवेन (XXXXX) समुपस्थितजरकस्तु दण्डहस्तः ।
स किल चकितचकितं व्रजति च पतति च चलनस्खलनाग्रम् ॥

वर्धमानं हिर्दिण् ॥५॥

यदि तृतीयपादो द्विगुणितो भवति अन्ये उपस्थितप्रचुपितवद् भवन्ति, (भवति) वर्धमानं नाम ॥

दृष्ट्वेन्दुं प्रथमप्रवर्धमानमुदितम् । पुनरेनमहरहः क्षय व्रजन्तम् ।
कुलबलधनकनके. न च किल वरमतयः । कुरुत मदमिह कुरुत चात्महितानि ॥

शुद्धविराडार्षभं यीनौ ॥६॥

यदि तृतीयपादो(दे)यीनाविति न्यासो भवति अन्यत्रोपस्थितप्रचुपितवद्भवति शुद्धविराडार्षभं नाम ॥

रोगश्वापदहिंस्रमृत्युसन्ततसेव्या प्रविगाह्य किल भवाटवीं भ्रमन्ति ।
ये शुद्धविराजमार्षभं प्रवचनमुरुनयरुचिर न विदन्ति ॥

दामावारा ददादिदि(दी)नि ॥७॥

आद्ये पादे सकृत् नि, द्वितीये द्विर्नि, तृतीये त्रिर्नि, चतुर्थे चतुर्नि कृत्वा । नि इति नहहि इत्यर्थः, एव भवति, भवति दामावारा नाम ॥

नि च्छेदः ॥८॥

तस्या दामावाराया उक्तासु मात्रासु पादस्यानुमात्रावसाने छेदो भवति ॥

नेन्ते ॥९॥

तस्या एव दामावाराया. चतुर्षु पादान्तेषु नेन नरौच इति न्यासो भवति । कथम्—

बहुविधनयवादा मुनिपतिवदनजठररामा ।
प्रणयति शिवपदमभिनुतनरदेवा सलिलसुविलसदचलजलनिधिसमधीरा ॥

पादपरिवृत्तेर्नामाक्षरपरिवृत्तिः ॥१०॥

येन प्रकारेण चत्वारोऽपि पादा परिवृत्ता भवन्ति तेनैव प्रकारेण तान्यपि चत्वारि नामाक्षराणि परिवृत्तानि सञ्ज्ञा भवन्ति । यथा—दामावारा । दामारावा । दावामारा । दावारामा । दारामावा । दारावामा । मादावारा । मादारावा ।मावादारा । मावारादा । मारावादा । मारादावा । वामादारा । वामारादा । वादामारा । वादारामा । वारादामा । वारामादा । रामादावा । रादामावा । रामावादा । रादावामा । रावामादा । रावादामा । एव चतुर्विंशति वृत्तानि भवन्ति । स परिवृत्तपाद. उदाहरणश्लोको भवति । तच्छ्लोकपादान्तैरक्षरैरपि वृत्तनामानि लक्ष्याणि ॥

अनुष्टुप् ॥११॥

अनुष्टुप् इत्यधिकार आ अध्यायपरिसमाप्तेः ॥

वक्त्रम् ॥१२॥

अनुष्टुभि छन्दसि वक्त्रसंज्ञा भवति । तस्य लक्षणमुत्तरत्रैव वक्ष्यते ॥

नादौ सि ॥१३॥

तस्य वक्त्रस्य आदौ पादशः सरवस्तु इहहि इति द्वौ त्रिकौ न भवतः ॥

दि(द्वी)ण् ए ॥१४॥

तस्यैव वक्त्रस्य पादशः चतुर्थाक्षरात्परत. नरौचे इत्येवार्यं त्रिको भवति ।

सिंहमत्स्यशशाङ्काभं क्रौञ्चबर्हिणहंसाक्षम् ।
मेघदुन्दुभिनिर्घोष मही कामयते वक्त्रम ॥

पथ्या युजोः य(ष्) ॥१५॥

यदि चतुर्थाक्षरात्परत' युक्पादयो' यिपेषु भवति, भवति पथ्या नाम ॥

अनुबद्धकटी कन्या चक्रवाकनिकूजिता ।
अपि क्रीडा नृणा पथ्या प्रजाजन्मसुखावहा ॥

विपरीताऽयुजोः ॥१६॥

यदि तथैव अयुजो यिपेषु भवति, भवति विपरीतपथ्या नाम ।

ऊर्मिलोलशिरोरुहा कन्यका मदिराक्षी या ।
बाहुव्यथितपयोधरा पथ्या हि विपरीता सा ॥

चपला इ ॥१७॥

यदि अयुजो. इहहि भवति, भवति चपला नाम ॥

रूक्षपिण्डाग्रदशना वक्त्रनिर्मांसनासाग्रा ।
कन्यका वातचपला काङ्क्षते स्वस्तसौभाग्यम् ॥

विपुला युजोर्द(द्द) न् ॥१८॥

यदि युजो' सप्तमो लघुर्भवति, स्याद्विपुला नाम ॥

पृथुपीनमृदुश्रोणी विपुलाक्षी हंसस्वना ।
असितायतकेशान्ता वृत्ता कन्या पुत्रार्थिना ॥

सर्वत्र सैतवस्य ॥१९॥

यदि सर्वपादेषु सप्तमस्याक्षरस्य लघुत्वं भवति सैतवस्याचार्यस्य विपुला नाम ॥

मण्डलं शिवमाननं चर्मर्द्धीकमनाविलम् ।
स्त्रि (स्त्री) सुखेप्वनपत्यता दुर्भगं तु महासुखम् ॥

सति मकरशा मध्ये ॥२०॥

विशेषविशिष्टत्वात् इनिति निवृत्तम् । दिण् (ण) इति प्रकृतमेवानुवर्तते । यदि चतुर्थाक्षरात्परतः सस्वसु, शाशाश, लालितौ, हहहि इति एते त्रिका भवन्ति विपुलाशब्दात् पुकारं व्युदस्य मकरशामध्ये भूत्वा यथाक्रम संज्ञा भवन्ति । यदि सस्वसु भवति, विपु (म) ला नाम स्यात् ॥

बहुसत्त्व चारुमुखं चतुरस्र घातमुखम् ।
विषमो दुःकालहितं कृपणास्य ह्रस्वमुखम ॥

यदि शाशाश भवति, स्यात् विकला नाम ।

स्निग्धच्छवि पद्मप्रभां छन्विच्छदा दैत्यारिणा ।
कि चाद्य मे देवै. सह सेव्योऽत्र सेनापतिः ॥

यदि लालितौ भवति, स्यात् विरला नाम ।

भग्नतुण्डं केकराक्ष नालावक्त्रं यत्कराालम् ।
प्रश्लि(श्लि)ष्टोष्ठ(ष्ठ) पीनगण्डं क्रूर नार्यश (स्त) न्मुख स्यात् ॥

यदि हहहि भवति , भवति विशाला नाम ॥

स्फारितास्य यदि मुखं शूकतीक्ष्णाग्रदशनम् ।
श्येनतुल्ये च नयने वाहिनी वारिचपला ॥

इति रत्नमञ्जूषाया छन्दोविचितया भाष्यतः चतुर्थोऽध्यायः ॥

पञ्चमोऽध्यायः

समानं लः ॥१॥

पाद इति अनुवर्तते । गायत्र्यादिषु उत्कृतिपर्यवसानेषु छन्दःसु पादशः आपादपरिसमाप्तेः यदि लालि इति न्यासो भवति, भवति समानं नाम ॥

पाणिपादमस्तकाननाक्षिकुक्षिपृष्ठगात्रवेदन्तकर्णनासिकादि ।
सर्वृणां समानमेव येषु यस्तु अस्ति तत् स्वपूर्वपुण्यपाक एव ॥

एतत् जगत्या छन्दसि । तथा अन्येष्वपि छन्दःसु ।

प्रमाणं रः ॥२॥

यदि नरौ इति न्यासो भवति, प्रमाण नाम स्यात् ॥

मतिद्युतिप्रभावसत्त्वधाग्वपुः बलाढ्यताकुलोद्भवत्वकान्तयः ।
तप(पः)प्रमाणलक्षिता क्षितौ नृणा ततः तपः कुरुध्वमुत्तमा नराः ॥

वितानमन्यत् ॥३॥

एताभ्या समानप्रमाणाभ्यामुत्तरत्र वक्ष्यमाणेभ्य· तनुमध्यादिभुजङ्गविजृम्भितपर्यवसानेभ्यश्च यदन्यत्समवृत्त यस्मिन् छन्दसि भवति तत् वितान नाम । एतच्च मात्रासमक (क) नृत्यगतिनटचरणानि (० चरणादीनि नामानि) भजते ॥

अभ्रसकटविनिःसृततपनः तत्क्षण भवति निष्कृतजलदः ।
नादयन्निव महीं दश च दिशा (शः) दुर्दिन महदुपोहति मघवा ॥

गायत्री ॥४॥

इतःप्रभृति गायत्र्यादिछन्दःसु कतिपयानि वृत्तानि सज्ञालक्षणाभ्या निर्दिश्यन्ते ॥

तनुमध्या त्यौ ॥५॥

यदि पादशः त्यौ इति न्यासो भवति, भवति तन्मध्या नाम ॥

सेनापतिपुत्री शोकात्पतिता सा ।
आसीत्तनुमध्या भूयस्तनुमध्या ॥

मुकुलिता हे ॥६॥

यदि हे इति न्यासो भवति, स्यात् मुकुलिता नाम ॥

विमुकुलितायाः कुसुमलतायाः ।
क्षणगतशोभा भवति वरश्रीः ॥

सूचिमुखी पाः (पा) ॥७॥

यदि पा इति न्यासो भवति, सूचिमुखी नाम स्यात् ॥

जगति प्राधान्यं भवति प्रागेव ।
किमुत श्रेयोऽन्यत् तपसा (सो) हे मर्त्याः ॥

शिखण्डिनी चा ॥८॥

यदि चा इति न्यासो भवति, भवति शिखण्डिनी नाम ॥

सुरेन्द्रैः पूज्येभ्यः नरेन्द्रैरर्च्येभ्यः ।
मुनीन्द्रैरीड्येभ्यः नमः सर्वज्ञेभ्यः ॥

उष्णिक् ॥९॥ कुमारललिता षि(षी)म् ॥१०॥

यदि षि(षी)म् इति न्यासो भवति, भवति कुमारललिता नाम ॥

अल खलु स रामः कुमारललितेन ।
इतीव पलिताङ्कून् जरा प्रतियुनक्ति ॥

वज्रकं शि(शी)म् ॥११॥

यदि शि(शी)मिति न्यासो भवति, भवति वज्रक नाम ॥

वज्रं तृणमपि स्यात् काले समुपयाते ।
वज्रं तृणमपि स्यात् काले समुपयाते ॥

अनुष्टुभ् ॥१२॥ माणवकक्रीडितकं मिमि(मीमी) ॥१३॥

यदि मिमि(मीमी)ति न्यासो भवति, स्यान्माणवकक्रीडितकं नाम ॥

सर्वजगत्ख्यातयशाः स्यान्मनुजो ज्ञानयुतः ।
तत्परतो नैव हित माणवकक्रीडितकम् ॥

चित्रपदं मि(मी)ने ॥१४॥

यदि मि(मी)ने इति न्यासो भवति, भवति चित्रपद नाम ॥

अप्रियमप्यवनीन्द्राः सुप्रियवत्प्रवदन्ति ।
को हि नरो भुवि विन्द्यात् चित्रपदं नृपवृत्तम् ॥

बृहती ॥१५॥ भुजगशिशुसृता विना ॥१६॥

यदि विना इति न्यासो भवति, भवति भुजगशिशुसृता नाम ॥

जगति सह जरारोगैः वि(चि ?)रमतिरमते यो ना ।
स्वपिति किल स निर्भीतिः भुजगशिशुसृतागारे ॥

तरङ्गवती ता(तौ)नौ ॥१७॥

यदि ता(तौ)नाविति न्यासो भवति, भवति तरङ्गवती नाम ॥

या तरङ्गबुद्बुदोपमा ता मनुष्यता सुदुर्लभाम् ।
प्राप्य मोदते नराधमो नोत्तमो जिनेन्द्रशास्त्रवित् ॥

पङ्क्तिः ॥१८॥ शुद्धविराट् मसौ ॥१९॥

यदि मसाविति लक्षण भवति, भवति शुद्धविराट् नाम ॥

भूत्वा शुद्धविराड् नरेन्द्रतः वर्चस्कक्रिमितामुपैति यत् ।
एतेनैव नते(ये)न दर्शिता संसाररमणीयता बुध ॥

पणवो म्नगा ॥२०॥

यदि म्नगा इति न्यासो भवति, भवति पणवो नाम ॥

मृदङ्गी मृदुललितालापा संयुक्ता वरयुवतिः पत्या ।
बभ्राजे निजशिशुना यान्ति(न्ती) खे तारेव पणवमध्या सा ॥

उपस्थिता ज्सुगौ ॥२१॥

यदि ज्सुगाविति न्यासो भवति, भवति उपस्थिता नाम ।

व्याघ्रीव जरा समुपस्थिता रोगैश्च वृकैरे(रि)व भक्ष(क्ष्य)से ।
मृत्युश्च मृगेन्द्र इवेक्षते अद्यापि हितं न करिष्यसे ॥

रुक्मवती भ्मसगा ॥२२॥

यदि भ्मसगा इति न्यासो भवति, भवति रुक्मवती नाम ॥

पुष्पितनानानोकहवन्तं प्राप्य वनान्तं प्रावृषि कश्चित् ।
उन्नतपीनश्रोणिपयोदा योषितमित्था नाथ उवाच ॥

मत्ता माहे दिच्छेदः ॥२३॥

यदि माहे इति न्यासो भवति भवति चतुर्थाक्षरैच्छेदः च, मत्ता नाम ॥

नारीणां ना नलिनमुखीनां मत्ताक्षीणां मधुरवचोभिः ।
बद्धो बद्धो भ्रमवशगो यः बद्धो बद्धः स च यमपाशैः ॥

त्रिष्टुभ् ॥२४॥ इन्द्रवज्रा शरे ॥२५॥

यदि शरे इति न्यासो भवति, भवति इन्द्रवज्रा नाम ॥

प्रक्षीणपूर्वार्जितपुण्यराशिं न त्रायते वज्रधरोऽपि मर्त्यम् ।
अक्षीणपूर्वार्जितपुण्यराशिः नैवेन्द्रवज्राभिहतोऽपि नश्येत् ॥

उपेन्द्रवज्रा षरे ॥२६॥

यदि षरे इति न्यासो भवति, भवति उपेन्द्रवज्रा नाम ॥

उपेन्द्रवज्रायुधपाण्टवेषु स्थितेष्वपि ख्यातपराक्रमेषु ।
पुराभिमन्यु [1]युधि चेज्जयेनां जयद्रथो रक्षति कं कमन्यः ॥

इन्द्रमाला द्वयम् ॥२७॥

यदीन्द्रवज्रा-उपेन्द्रवज्रे सहैकस्मिन् श्लोके भवत, भवति इन्द्रमाला नाम ॥

अम्लानमाला(त्या ?) सुरसुन्दरीभिः वृत्तेन्द्रमाला च्यवते दिवश्चेत् ।
कालेन नार्या इव मुक्तमाला मर्त्या वयं किं जलबुद्बुदाम. ॥

दोधकं तुपे ॥२८॥

यदि तुपे इति न्यासो भवति, भवति दोधकं नाम ॥

कालविधाविव नाटकवृत्तं दर्शयितु भुवि सर्वजनेभ्यः ।
अम्बररङ्गमसौ गिरिकूटात् सूर्यनटः प्रविशन्निव भाति ॥

रथोद्धता तिलौ ॥२९॥

यदि तिलाविति न्यासो भवति, भवति रथोद्धता नाम ॥

सर्वभावविधितत्त्वदर्शिनः सर्वसत्त्वहिततत्त्वदेशिनः ।
अर्हतोऽहमघराशिनाशिनः संस्तुवे त्रिभुवनप्रकाशिनः ॥

---

1 यदि B.

स्वागता तिले ॥३०॥

यदि तिले इति न्यासो भवति, भवति स्वागता नाम ।

धर्मतीर्थकरमुख्य नमस्ते नाथ नष्टभवबीज नमस्ते ।
बुद्ध सर्वजनवृत्त नमस्ते हेमनाभजिनमान नमस्ते ॥

श्येनी तुलौ ॥३१॥

यदि तुलौ इति न्यासो भवति, भवति श्येनी नाम ॥

श्येनगृध्रवायसादिभोजन मूत्रपित्तशोणितादिभाजनम् ।
सन्ततं शरीरमध्ननाशनं भूषणेन मोहयत्यधीर्जनः ॥

सुभद्रिका विषौ ॥३२॥

यदि विषाविति न्यासो भवति, भवति सुभद्रिका नाम ।

इह भवति हि धार्मिकस्य नुः सुरवरनरपूजनीयता ।
पुनरपि च सुभद्रिका गति(तिः) परममपि पद तथा गत. ॥

सारिणी रितौ ॥३३॥

यदि रिताविति न्यासो भवति, भवति सारिणी नाम ॥

तथा मकरकेतुमान् केतुमान् रथैस्स शतशोऽभितः शोभितः ।
रणे च रथसङ्कुलः सङ्कुलः युगान्तजलदारुणो दारुणः ॥

वृन्ता विहा ॥३४॥

यदि विहा इति न्यासो भवति, भवति वृन्ता नाम ।

यमपुरुषकरहतं यावत् पवनहत इव फली वृक्षः ।
न निपतति तव शरीर त्वं कुरु कुरु हितमहित त्यक्त्वा ॥

शालिनी माल्ये दि(दी) ॥३५॥

यदि माल्ये इति न्यासो भवति, भवति शालिनी नाम । चतुर्थाक्षरैः छेदश्च भवति ॥

एतद्रूप कामुक त्वं ब्रवीषे । एषा नारी शालिनी मत्प्रियेति ॥
भक्ष्या या ते सारमेयैः सगृध्रैः । विद्धद्भिर्वित्पूर्णकुम्भायमानम् ॥

वातोर्मिमाला माभ्ये ॥३६॥

यदि माभ्ये इति न्यासो भवति, भवति वातोर्मिमाला नाम । दि अनुवर्तनात् चतुर्थाक्षरे छेदश्च भवति ।

या ह्रस्वा वै विकटा काकजङ्घी संक्षिप्तभ्रूः परुषस्थूलकोष्ठी ।
नाद्योपेता व्यपदेशाश्रिता वा सा वै कन्या धृतवातोर्मिमाला ॥

भ्रमरविलसिता यहि(ही) ॥३७॥

यदि यहि(ही) इति न्यासो भवति, भवति भ्रमरविलसिता नाम । चतुर्थेऽक्षरे छेदः ॥

कन्यावन्यां समसितदशना पीनश्रोणी मृदुकरचरणा ।
कुर्यात् प्रीतिं पतिभवनरता चित्रेव स्रग् भ्रमरविलसिता ॥

इति रत्नमञ्जूषाया छन्दोविचित्या भाष्यतः पञ्चमोऽध्यायः ॥

षष्ठोऽध्यायः

जगती ॥१॥

जगत्यधिकारः । किमर्थोऽयमधिकारः? 'भुजङ्गप्रयातं चः' (+इति) वक्ष्यते । तत्र न ज्ञायते कियन्तश्च इति । जगत्यधिकारात् चत्वार इति गम्यते, तदर्थोऽयमधिकारः ।

भुजङ्गप्रयातं चः ॥२॥

यदि जगत्यां छन्दस्यापादपरिसमाप्तेः नरौचे इति न्यासो भवति, भवति भुजङ्गप्रयातं नाम ॥

न पात्रे प्रदित्सन्नपात्रे प्रदित्सन्(न्) न देयं प्रदित्सन्नदेयं प्रदित्सन् ।
न काले प्रदित्सन्नकाले प्रदित्सन्(न्) न दाता नरः स्यान्नदाता नरः स्यात् ॥

तोटकं पः ॥३॥

यदि विवपी इति न्यासो भवति, भवति तोटकं नाम ॥

स्वदतो(वचो ?)भिरुदारगुणैर्विपुषः मतिमप्यमला युयुषो जगति ।
सततं वरधर्मकथा जुगुषः प्रणुनूपुरुह वरतीर्थकृतः ॥

वंशस्था षषौ ॥४॥

यदि षषाविति न्यासो भवति, भवति वंशस्था नाम ॥

इयानि भद्रे कुमुदानि मारुतः नितान्तताम्राणि च पाण्डराणि ।
उपोप बाधाति यथायथावृतं[1] तथैव बिम्बोष्ठमिदं तवाननम् ॥

इन्द्रवंशा शषौ ॥५॥

यदि शषाविति न्यासो भवति, भवति इन्द्रवंशा नाम ॥

मध्यन्दिनोल्कापतनं च दृश्यते महाण्डजानां पतनं च दृश्यते ।
चन्द्रार्कतारापतनं च दृश्यते नैवान्तकस्यागतिरेव दृश्यते ।

वंशमाला द्वयम् ॥६॥

यदि द्वे अपि लक्षणे सहैव भवतः, भवति वंशमाला नाम ॥

---

1 यथामृतं A.

लोकान्य(न्य)रत्रोत्तमभोगसयुतात्(न्) यो हिंसयात्मानमवापयेश्वरः ।
स पाययित्वातिदुदुःसह विषं स्ववंशमालापगतिं समापयेत् ॥

समवृत्तेषु विषमार्धसमवृत्तभूताया वंशमालाया वचनं लघुसप्रतिपत्त्यर्थम् । अयुक्पादप्रथमपादद्वितीयपादतृतीयपादपूर्वार्धत्रिपदीमध्यमद्विपदीभ्यो वंशस्थ-इन्द्रवंशाभ्यां चतुर्दशविधा वंशमाला तथा इन्द्रमाला च अधसमदय वर्तते । हि—आख्यानिके इति शब्दसंज्ञे (?) ॥

प्रमिताक्षरा पुषि(पी) ॥७॥

यदि पुषि(पी) इति न्यासो भवति, भवति प्रमिताक्षरा नाम ॥

अलकावकीर्णहरिचित्ररसं जनिताक्षिरागमधरामरसम् ।
सखि भाति किञ्चिदुपयुक्तरसं तव वीक्षणेन मुखमभ्यधिकम् ॥

वनमालिनी हुसे ॥८॥

यदि हुसे इति न्यासो भवति, भवति वनमालिनी नाम ॥

अशितपन च चाञ्चनंसुवर्णं जलरुहगर्भकेसरनिभं वा ।
मलयजवालसस्यसदृशा वा वरवनमालिनीव[१] इति श्री[२] ॥

द्रुतविलम्बिता हुसौ ॥९॥

यदि हुसाविति न्यासो भवति, भवति द्रुतविलम्बिता नाम ॥

कनकभूषणसंग्रहणोचित. (तो) यदि मणिस्त्रपुणि प्रतिबध्यते ।
न च विरौति न चापि विराजते भवति योजयितुर्वचनीयता ॥

वैश्वदेवी काचे दु ॥१०॥

यदि काचे इति न्यासो भवति दु इति पञ्चमे अक्षरे छेदश्च भवति, वैश्वदेवी नाम भवति ॥

ज्ञानं जन्तूनां नोपरोधप्रवृत्तं क्षय्यं पापानां यत्नवानां च रोधम् ।
बन्धो मोक्षश्चेत् ज्ञायते येन चात्मा सर्वज्ञत्वं च प्राप्यते तत् प्रधानम् ॥

जलोद्धतगतिः पिषि(पीषी) दू ॥११॥

यदि पिषि(पीषी) इति न्यासो भवति षष्ठे अक्षरे[१] छेदश्च भवति, भवति जलोद्धतगतिर्नाम ॥

अपावनकठोनखः कृशपदः बृहत्स्वतनुको गभीरविनयः ।
निपीडितहनुश्चुहुण्डनयनो न नन्दति नरो जलोद्धतगतिः ॥

---

१ चाञ्चनवर्णं B. । २ Both mss read मालिनि इव ।

१ अक्षरे A. Dropped by B. ।

प(पु)टा हिके ह(हृ)ण् ॥१२॥

यदि हिके इति न्यासो भवति अष्टमे अक्षरे छेदश्च भवति, भवति प(पु)टा नाम ॥

उपगतसलिलाना नीलपक्षैः भ्रमरपरभृतानां कण्ठरावैः ।
मदनमदविकासैश्चाङ्गनानां जनयति चतुरत्वं पुष्पमासः ॥

अतिजगती ॥१३॥ प्रहर्षिणी किंतेदी (किन्ते दि) ॥१४॥

यदि किन्ते इति न्यासो भवति तृतीये अक्षरे छेदश्च भवति, भवति प्रहर्षिणी नाम ॥

मानुष्यं चलजलबुद्बुदप्रकाशं मत्वेदं बहुविधवेदनापरीतम् ।
तत्सारं परमुपलभ्य जैनधर्मं तं प्राप्तुं भव सततं कृतप्रयत्नः ॥

रुचिरा नौवि(वी)नौ दि(दी) ॥१५॥

यदि नौ वि(वी)नाविति न्यासो भवति चतुर्थेऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति रुचिरा नाम ॥

यतिस्तुतस्त्रिदशगणेन्द्रपूजितः सदीश्वरो भरतनरेन्द्रसंस्तुतः ।
अवाप्तवान् सुखमतुलं जिनोत्तमो ददातु नो भयरहितोऽक्षयं पदम् ॥

मत्तमयूरं माले ने ॥१६॥

यदि माले ने इति न्यासो भवति दि(दी) इत्यनुवर्तनात् चतुर्थाक्षरे छेदश्च भवति, भवति मत्तमयूरं नाम ॥

कृत्वा धर्मं शर्मसमग्रं नृसुरेषु प्राप्याप्राप्यं कापुरुषाणां मनसापि ।
अन्ते मोक्षं नित्यसुखौघं समुपैति तस्माद्धर्मे त्वं भवसक्तो भव सक्तः ॥

शक्वरी ॥१७॥ वसन्ततिलकं मौनि(नी)पे ॥१८॥

यदि मौनि(नी)पे इति न्यासो भवति, भवति वसन्ततिलकं नाम ॥

श्रीमण्डपेषु मणिरत्नविभूषितेषु सिंहासनेषु वरचामरवृन्दमध्ये ।
सामन्तभूतनयनानि मुदा दधाना भान्तीन्द्रभानुशशिवज्जरपाः स्वपुण्यैः ॥

असम्बाधा कह्मा दु ॥१९॥

यदि कह्मा इति न्यासो भवति पञ्चमे अक्षरे छेदश्च भवति, भवति असम्बाधा नाम ॥

गूढस्नायुप्रं (?) क्षितितलचरणाश्लिष्टा कम्बुग्रीवा वा जलकमलदलस्निग्धा ।
ऊर्ध्वभ्रूलेखा समुचितभुजा नृणां पार्श्वे शोभाना रचितसुरतसम्बाधा ॥

अपराजिता हिमुनौ द ॥२०॥

यदि हिमुनाविति न्यासो भवति, सप्तमे अक्षरे छेदश्च भवति, (+ भवति) अपराजिता नाम ॥

कमलदलनखा महानयनान्तरा खगपतिनयना गजाङ्कुशनासिका ।
उरसि पृथुघना महोरुकटीकृता भवति तनुरिय रणेष्वपराजिता ॥

राजरमणीयं षि (षी)त्वे ॥२१॥

यदि षि (षी) त्वे इति न्यासो भवति सप्तमे अक्षरे छेदश्च द इति अनुवर्तनात्, भवति राजरमणीय नाम ॥

सुलक्षणविशिष्टः समाप्तबहुविद्यः सदा गुरुषु भीरुः सदा रिपुषु शूरः ।
अनङ्ग इव नित्यं जिनोत्सवकराङ्कः स्वराज रमणीयः परैरहरजय्य ॥

प्रहरणकलिका विरिनि(नी) ॥२२॥

यदि विरिनि(नी) इति न्यासो भवति द इत्यनुवर्तनात् सप्तमे अक्षरे छेदश्च भवति, भवति प्रहरणकलिका नाम ॥

अहिनकुलमुखं पृथुसमशिरसं जलदसरसिजं सितपुरुदशनम् ।
वरवृषभगतिं त्वरितमनुवशात् अनुसरति चमूः प्रहरणकलिका ॥

अतिशक्वरी ॥२३॥ चन्द्रवर्त्मा विविवि(वी) ॥२४॥

यदि विविवि(वी) इति न्यासो भवति, भवति चन्द्रवर्त्मा नाम ॥

वरवृषभगतिव(र)रुणसमभुनखः यदि च भवति मृगपतिसदृशमुखः ।
स किल भवति समुचितबहुयशाः दिवि भुवि च नरपतिरमरसमः ॥

माला द ॥२५॥

सेव चन्द्रवर्त्मा यदि षष्ठे अक्षरे छेदो भवति, भवति माला नाम ॥

कमलशिरसमनिमिषसदृशमुखं निशितदशनमकुटिलचरणतलम् ।
अकुलजमपि पतिमिह यदि लभते सुसुखममयमनुभवति वसुमती ॥

मणिगणनिकरा द (इ) ॥२६॥

पुनरपि सैव चन्द्रवर्त्मा अष्टमेऽक्षरे छेदो भवति (+चेत्) भवति मणिगणनिकरा नाम ॥

गुरुतरमविषमसुपचितकठिनं सुघटितभुजतनुपुरुषगजवरम् ।
यदि भवति जगति पुलिनसमसुरः भवति किमु तमिह मणिगणनिकरः ॥

मालिनी विरये ॥२७॥

यदि विरये इति न्यासो भवति दृ इत्यनुवर्तनात् अष्टमेऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति मालिनी नाम ।

मम हयखुरभिन्न मार्गरेणु नरेन्द्रा.
मुकुटपटविलग्न भृत्यभूता वहन्ति ।
न च मम परितोषः येन(यत्र)मा वत्सराजः
प्रणमति गुणशाली कुञ्जरज्ञानदक्षः ॥

अष्टिः ॥२८॥ ललना तिहिनि(नी) ॥२९॥

यदि तिहिनी इति न्यासो भवति, भवति ललना नाम ॥

अप्रभृष्यमभिरतिबलकुलधनकरं
नन्दमिन्दुवदनममलकमलवदने ।
शापयोपयशसमिभवरखद्गगतिं
द्वारि तिष्ठति तव वररुचिरिति ललने ॥

वेल्लिता पि (पी) हिम (मा) दू ॥३०॥

यदि पि (पी) हिमेति न्यासो भवति दू इति षष्ठे अक्षरे छेदश्च भवति, भवति वेल्लिता नाम ॥

बलवाचयवान् सततकुमतिकालापेक्षी
नृपतिर्विहितो गुणगणयुतवृत्तो वीरः ।
लभते पृथिवीं धनपशुवरपूर्णामद्धा
सुजितैस्त्वहितैः शठकुह(+कश)नैर्धा युक्तः ॥

वृषभगजविलसिता सौविनि (वी) द ॥३१॥

यदि सौविनि(वी) इति न्यासो भवति द इति सप्तमेऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति वृषभगज विलसिता नाम ॥

गोवृषभायताक्षमुरुललितपदगति
लम्बविशालकर्णमृदुकशिखरितनखम् ।
व्यायतबाहुक मृदुलबहुलशिरसिज
श्रीर्न जहाति नित्यवृषभगजविलसितम् ॥

कोमललता कवारौ दि(दी)दु ॥३२॥

यदि कवाराविति न्यासो भवति चतुर्थेऽक्षरे पञ्चमेऽक्षरे च छेदश्च भवति, भवति कोमललता[1] नाम ।

---

1 Both mss read कोमलल(लि) ता.

फुल्लैः पुष्पैः कोमलत्वैता रक्तप्रवालाङ्कुरै.
शोभायुक्ता षट्पदवृता स्यान्माधवीमाधवे ।
नृणां लक्ष्मीश्चात्मविभवैर्भ्राजेत पुण्ये सति
या योऽन्यामेव विकृतिं सा चापि तस्यास्त्ययं ॥

अत्यष्टिः ॥३३॥ पृथ्वी षिषि(षीषी)रौ॥३४॥

यदि षिषि(षीषी) राविति न्यासो भवति, भवति पृथ्वी नाम ॥

सिरावितमस्थिकाष्ठमयमांसमृल्लेपन
शरीरगृहमत्र पित्तकफमूत्रविड्भाजनम् ।
अनेकगदतस्करप्रचुरगोचरं नश्वरं
समेत्य मतिमान् प्रमाद्यति यदेकमेभ्यो जनः ॥

हरिणी विकसौ द् ॥३५॥

यदि विकसाविति न्यासो भवति दू इति षष्ठेऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति हरिणी नाम ॥

पलितवलिभि. कीर्णं तूर्णं जरैत्यजरा सती
स्रवति गलितादम्भःकुम्भादिवायुरपीदृशम् ।
अतुलमतुलं रोगानीकोद्भवं च सुद(दुः)सहं
कथमिह भवे कष्टे मिथ्या वय तु रमामहे ॥

शिखरिणी रासिशि(शी)॥३६॥

यदि रासिशि(शी)इति न्यासो भवति षष्ठेऽक्षरे छेदश्च दू इत्यनुवर्तनात् भवति, भवति शिखरणी नाम॥

अस्तावस्तं यातो दशशतकरः संहृतकर.
उदेत्येष श्रीमान् विसृतकिरणः शीतकिरणः ।
इति प्रासादस्थः सयुवतिजनो माद्यति जन
अजानन्नायुष्यं क्षुदितपतितौ हा[1] सपदि तौ ॥

मन्दाक्रान्ता कृतहये दि (दी) दू ॥३७॥

यदि [2]कृतहये इति न्यासो भवति चतुर्थ षष्ठेऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति मन्दाक्रान्ता नाम ॥

मद्योन्मत्तान् पथि निपतितान् कुक्कुरक्रोष्टु(ष्ट्र)दृष्ट्यान्
भ्रष्टाच्छादान् वमधु (थु) वदगान् मक्षिकाचुम्बितास्यान् ।

---

१ हासपदितौ B., हासपटितौ A',

२ Both mss. read कृतहये in the Sutra as well as the Bhasya, but त must be dropped.

मन्दाक्रान्तस्खलितचरणान् गच्छतोऽन्यश्च वीक्ष्य
पानागारं प्रविशति नरस्तं वयं किं वदामः ॥

वंशपत्रपतितं लुसुहि (ही) दू (दल्द) ॥३८॥

यदि लुसुहि (ही) इति न्यासो भवति दु (दल्द) इति दशमेऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति वंशपत्रपतित नाम ॥

व्याधिसहस्रदूषिततमाहितजरमरणे
योऽत्र भवे प्रमोदत इतश्च्यवनमगणयन् ।
पर्वतकूटमेत्य मधुने तत इह निपतन्
लेढि स वंशपत्रपतितं मधुलवमणुकम् ॥

इति रत्नमञ्जूषिकाया छन्दोविचित्या भाष्यतः षष्ठोऽध्याय ॥

सप्तमोऽध्यायः

धृतिः ॥१॥

धृतिरित्यधिकारः । किमर्थोऽयमधिकारः ? छन्दोलक्षणार्थम् ।

कुसुमितलता वेल्लिता म्तिनयौ युयू ॥२॥

यदि म्तिनयौ इति न्यासो भवति पञ्चमेऽक्षरे षष्ठेऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति कुसुमितलता-वेल्लिता नाम ।

राज्यं चक्राङ्कं नव च निधयो देवयोग्याश्च भोगाः
सैषा सम्पूर्णा रथचरभृतश्रीरपि प्राप्तनाशा ।
वातेनोत्ताता कुसुमितलता वेल्लिता मालतीव
प्रायो नान्येषा व्यसनपवनाघातमात्रासहानाम् ॥

वाचालकाञ्ची क्सौ सेतौ दे ॥३॥

यदि क्सौ सेताविति न्यासो भवति दे इति एकादशाक्षरे छेदश्च भवति, भवति वाचालकाञ्ची नाम ।

नीवीनैथिल्यलीला प्रविलसद्वाचालकाञ्चीगुणा
अन्तर्वेश्म ... गुलीभूतहसना नेत्रान्तकान्तेक्षणा ।
या नार्यस्तत्र कार्या न च मतिः कामोऽयमेत्येव ते
शिष्टा ह्याचक्षते शास्त्रमतयो या वञ्चना काञ्चनम् ॥

अतिधृतिः ॥४॥ शार्दूलविक्रीडितं मसो(जौ) से तौ दै ॥५॥

यदि मसौ(+जौ) सेताविति न्यासो भवति दै इति द्वादशाक्षरे छेदश्च भवति, भवति शार्दूल-विक्री(+डि)तं नाम ॥

पर्जन्यः पिहितः प्रवर्षति न तत् प्रोद्भिद्यते भूतले
वृक्षा मासफला भवन्ति न, न तत्प्रस्यन्दते पर्वतात् ।
सत्त्वानां विकृतिः न चापि पिहितं प्रादुर्भवत्यन्यथा
हत्वा प्राणिन एव तत्, भवति हि प्राज्ञैः सदा वर्जितम् ॥

वायुवेगा म्रुपिनौ ॥६॥

यदि म्रुपिनौ इति न्यासो भवति दै इत्यनुवर्तनात् द्वादशाक्षरे छेदश्च भवति, (भवति) वायुवेगा नाम ॥

मान्धातैलययातियातिनहुषा मिरय इव स्थिताः
नानादिग्गतवायुवेगनिहतद्रुमतृणराजिवत्
ता ता प्राप्य दशां निपेतुरचिरात् कृतसुकृतक्षयाः
तस्मात्पूर्वकृत पुरैति निधनं व्रजत तपोवनम् ॥१॥

माधवीलता कौलिनि(नी)नौ द ॥७॥

यदि कौलिमि(मी)नाविति न्यासो भवति द इति सप्तमे अक्षरे छेदश्च भवति, भवति माधवीलता नाम ॥

वेश्या दृश्या प्रमत्तान् भ्रमरगणानिव माधवीलता
बध्वा(दृष्ट्वा)गाढोपगूढ हरिणगणानिव वागुरा वने ।
आघ्नात्या(दाया)र्थं तु तेषा यदि रमितप्रणिनो जरायुतात्(न)
निस्सारत्व विदित्वा त्यजति शिशूनिव वानरी लघून् ॥

कृतिः ॥८॥ दीपिकाशिखा सिचिह्ला(ह्लौ)दिदू ॥६॥

यदि सिचिह्लाविति न्यासो भवति दिदू इति तृतीये षष्ठऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति दीपिका शिखा नाम ॥

पण्डितजनसहवासो जनयति मतिमुत्तमा नृणाम्
काञ्चनगिरिवरपार्श्वे भवति परभृतोऽपि तत्प्रभवः ।
दुर्मतिजनसहवासः प्रशमयति मतिं सतामपि
मारुत इव सुसमृद्धा विपुलविमलदीपिकाशिखाम् ॥

सुवदना यशिवानि(नी)द ॥१०॥

यदि(+य) शिवानि(नी) इति न्यासो भवति द इति सप्तमेऽक्षरे छेदश्च भवति (भवति) सुवदना नाम ।

शीर्णा बीजेन तुल्या इति किल दशना ओष्ठौ च विगतौ
केशा भूमौ विकीर्णाः कुवलयसदृशे नेत्रे च विकृते ।
चारू रम्भानिभोरू स्वजघनफलकौ स्वस्थौ पृथुगती
गृध्रो गोध शरीर यदि किरति तदा सैषा सुवदना ॥

प्रकृतिः ॥११॥ स्रग्धरा कौमिहये दद ॥१२॥

यदि कौमिहये इति न्यासो भवति सप्तमेऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति स्रग्धरा नाम ॥

चित्रं सचिन्त्य तैस्तैः पथिभिरुरुभुजैः शत्रुवर्गं निहत्य
भोगान्भुक्त्वा यथेष्टं ललितयुवतिभिः यौवने रञ्जयित्वा ।

वाह्नि(र्द्व)क्येह करिष्ये तव इतिविमलेक्षर्कितं ब्रह्मत नु
आपत्याह्नत्यकालो नयति समयुमौयात यामामिकोऽपि ॥

द इति वर्तमाने पुनः द दग्रहणं शापकं छन्दसः उत्तरं न गच्छति उभयच्छेदाधिकार इति ॥

कथा द्रि(ह्रि)गतिः मौनह्रुसौ ॥१३॥

यदि मौनह्रुसाविति न्यासो भवति द द इत्यनुवर्तनात् सप्तमे सप्तमेऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति कथागतिर्नाम ॥

मूको वचःप्रवृत्ति ।मनमचरणोऽवलोकनमन्धक.
श्रोत्रेन्द्रियेण हीन श्रवणमभिहितः प्रकीर्णकथारमै ।
पक्षी प्रलूनपक्षः खगमनमुदचौ गति स शिलाप्लव.
कर्तुं यथा न शक्तो न सुकृतरहित. तथा सुखमाप्नुयात ।

ललितविक्रम(मः)स्तितितौद(दूल्ह) ॥१४॥

यदि स्तितिताविति न्यासो भवति द(दूल्ह)इति दशमेऽक्षर छेदश्च भवति, भवति ललितविक्रमो नाम ।

एलकयानकृत्रिमगजैगतैर्ललितवे(वि)क्रमः शैशव
मत्तगजेन्द्रवाजिचरणैरमा(गा)श्चरणविक्रमो यौवन ।
एष जरानिपीडितजव तवाद्य चलविक्रम स्थाविर ।
एहि वन पुरेति चयकृन्न ते पुरुषविक्रमो ह्यन्तक ॥

आकृतिः ॥१५॥ भद्रकवृत्तं भिषिषिषि(भीषीषीषी) दूल्ह ॥१६॥

यदि भिषिषिषि(भीषीषीषी)इति न्यासो भवति दूल्ह इति दशमेऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति भद्रकं नाम ॥

पादकशोदराधरकृतोदयो(प)ि च पराजय किमु पुनः
काकिणिकान्त एव भवता वृकोदरवरे पतन(न)स्वहतये ।
यस्य पराजयेन सतत जयोपि च विनाशये(न्यु)रिति वै
तन्मनुजाधिदेव पथि यः कथ स लभतेऽशुभद्रकमपि ॥

दीपार्चिः किरिताता(कीरितिलौदै) ॥१७॥

यदि कि(की)रितिला(लौ)इति न्यासो भवति दै इति द्वादशाक्षर छेदश्च भवति, भवति दीपार्चि. नाम ॥

यश्चानेकभवार्जितोरुसुकृतप्रसादजनितः सुदुर्लभ.
दीपार्चिस्त टि (डि) दिन्द्रचापजलदसलरसलिलबुद्बुदोपमः ।
आयुर्ध्वंसितया तमेत्य नृभवं चिरं न च विलम्बितुं क्षम-
मध्याबाधसुखापवर्गभवने त्वरा कुरु च जैनभाभय ॥

विकृतिः ॥१८॥ वृन्दारकं रि ति तौ तौ ॥१९॥

यदि रि ति तौ ताविति न्यासो भवति, भवति वृन्दारक नाम ॥

सवन्मदजलार्द्रगण्डमदान्धहस्तिक्षरद्रक्तपानोचितः
मृगेन्द्रनखवज्रदारुणकरूक्षवक्त्रोमुखो व्याघ्रवृन्दारकः ।
जरा मुदितनष्ट ××बलवीर्यमानावलेपो वराक· पुनः
स भक्षयति दर्दुरान् मृगगणैरवक्षिप्यमाण श्रृगालादिभिः ॥

अश्वललितं वि षि षि षि (वी षी षी षी) दे ॥२०॥

यदि वि षि षि षि (वी षी षी षी) इति न्यासो भवति दे इत्येकादशाक्षरे छेदश्च भवति, भवत्यश्वललितं नाम ॥

अवनितलप्रतिष्ठितपदस्समग्रतनुताम्रपुष्पितनख,
विपुलललाटकर्णनयनः प्रसन्नतनुरोमशोभिततनुः ।
दिवसकरांशुवाहदशनो गिरिस्थलसुसंहतायतभुजः
कुलबलदुर्गतोऽपि पुरुषः प्रशास्ति किल राज्यमश्वललितम् ॥

मन्द्रक्रीडा काशि हिवि द (वीद्) ॥२१॥

यदि काशि हिवि (वी) इति न्यासो भवति द (द्) इत्यष्टमेऽक्षरे छेदश्च भवति, (भवति)मन्द्रक्रीडा नाम ॥

विद्युन्मद्वन्मत्तारेखा सुरपथनुतवितजलधररवः
सद्यश्श्यामः शैलाद् दुर्गे धृतमुपलविवरनिपतितसलिल· ।
वृक्षाकम्पी चण्डो वायुः परिपतितहृषितशिखिरुतसहितः
फेनैः शुक्लैः कीर्णो नद्या नवसलिलचपलसमुपह्वततट. ॥

संकृतिः ॥२२॥ तन्वी सहि(ही) सूहे दै ॥२३॥

यदि सहि(ही) सुहे इति न्यासो भवति दै इति द्वादशाक्षरे छेदश्च भवति, भवति तन्वी नाम ॥

चापनतभ्रू : समसितदशना बर्हिणचातकशुकसदृशाक्षी
वृत्तमहोरु(रू) घनपृथुजघना मृदुसितायतसमकृशकेशी ।
संयतपार्ष्णिस्तनुमुखचरणा सूक्ष्मतनूरुहततनुजङ्घा
सा किल तन्वी मृदुकरचरणा स्यादिह केवलमवनिपपत्नी ॥

विभ्रमगतिः किषि(कीषी) शसौ ॥२४॥

यदि किषि (कीषी) शसाविति न्यासो भवति दै इति अनुवर्तनात् द्वादशाक्षरे छेदश्च भवति, भवति विभ्रमगतिर्नाम ॥

यैषा कुष्टविकारपामकिटिपक्लिन्नस्रवत्' वितरक्तकलेवरा
यैषा जीर्णकुलीरवत्प्रशिथिला मुक्तौष्ठसन्ध्यस्थिजालशिराතता ।
यैषा गृध्रनिकण्ठकूजितशिरा सर्वान्त्रमेदश्छिद्रापिहितान्तरा
ताभिः प्राशवशा न यान्त्यपगति भ्रूक्षेपणाभिहृता नरबुद्धयः ।।

अभिकृतिः ।।२५।। क्रौञ्चपदं लेलेविविवि(वी)दूल(दूल्) ।।२६।।

यदि लेलेविविवि(वी) इति न्यासो भवति दूल (दूल्) इति दशमेऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति क्रौञ्चपदं नाम ।।

यज्जिनगीतं स्पष्टपदार्थं गणधरविरचितमृदुविशदपद
तत्त्वविभागव्यक्तिगभीरं सुनिपुणबहुविधनयशतवहनम् ।
स्वार्थविशेषध्यानपुराणं क्षपयति मलमपि जनयति पटुता
तद्भुवनैकज्योतिरुदारं श्रुतमपरमयतु मम मतितिमिरम् ।।

हन्स(हंस)पदा यीयीविविवि(वी) ।।२७।।

यदि यियि(यीयी)विविवि(वी)इति न्यासो भवति दूल(दूल्)इत्यनुवर्तनात् दशमेऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति हंसपदा नाम ।।

वीरं विमल देवं त्रिदशासुरनरवरपतिगणधरमहित
रागाद्ययुतं रोगैर्वियुतं विजननमरणमशरणममलम् ।
हेमाभतनुं कामारिजितं दिवि भुवि च विततसुविमलयशसम्
मत्वा जिनपं मर्त्यो लभते शिवपदमपगतभवभयमुरु तम् ।।

उत्कृतिः ।।२८।। अपवाहं किविविविवा दो ।।२९।।

यदि किविविविवा इति न्यासो भवति दो इति त्रयोदशाक्षरे छेदश्च भवति, भवति अपवाहं नाम ।।

वाक्य मे शृणु वरतनु निगदितमिह तव हितमतिसुलभं शश्वत्
कामेषु प्रचलितमतिकृशसारमपि सुखकरमपि बहुकारुण्यम् ।
दासं त्वं त्यजसि रिपुमिव सकलविमलशशिनिभमुखसुशीलं ते
सख्य मे यदि गणयसि न तु मम हितमिह खलु सखि तव मोक्तव्यम् ।।

आपीलं सिवियविवि(वी)दो ।।३०।।

यदि सिवियविवि(वी)इति न्यासो भवति दो इति त्रयोदशाक्षरे छेदश्च भवति, भवति आपीलं नाम ।।

मानवपतिरुरुबलनयसत्त्वो भूत्वा भुवमनुभवति च सकला
भासुरसुरवरपरिषदुपेतो नाकालयगणपतिरपि भवति ।
मोक्षममनुपममपगतशोकापीलं सुखमविचलमपि लभते
धार्मिक इति तव धृतिमतिचेष्टा धर्मे कुरु बुध जिनबुधकथिते ।।

भुजङ्गविजृम्भितं काशिहि मुनौ ह(द)दे ॥३१॥

यदि काशिहिमुनाविति न्यासो भवति ह(द)दे इत्यष्टमे एकादशेऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति भुजङ्गविजृम्भितं नाम ॥

नागेनागे नागेनागे स्थलममति विगलितमदे प्रशुष्यति धर्मगे
शेषेशेषे शेषेशेषे क्षितजलदपटहनिनदैः सदा किल बोध्यते ।
तस्यैतस्यै तस्यैतस्यै वितमसि विरजसि परिणायबिन्दुनिभामये
हेतौहेतौ हेतौहेतौ कथ किमुत भवति भवतो रजस्तमसोर्गुणः ॥

तत्र अ(श)धिका मध्यमतिच्छन्दः ॥३२॥

यदि भुजङ्गविजृम्भितमेव मध्य(ध्ये)लघुभिरभ्य(श)धिकैर्युक्त भवति, भवति अतिच्छन्दो नाम ॥

एष प्रोचुः क्रौञ्चस्याग्र मणिकनकरजतपटलशशिकिरणसदृश शि(खि)ताम्बुदसंनिभम् ,
क्रीडाभूमिः गन्धर्वाणां गजगवयशरभरुरुपृषतशकुनिचरितं प्रतिष्ठितकिन्नरम् ।
भिन्नं शक्त्या लीलावत्या स्फुटकुटजतिलकखदिरधवविषमशिखर लतागृहसंकटम् ,
स्कन्धस्वेदैः देवैः दृष्टो हितमिव पिबतु तरुणरविसदृशवदनो मयूरवरध्वजः ॥

चण्डवृष्टिप्रयातं हितः ॥३३॥

आदित एव षड् लघवो भूत्वा पुनर्मध्यलघुत्रिका भवन्ति, भवति चण्डवृष्टिप्रयातं नाम ॥

नदति मदशिखी न भा भाति विद्युल्लताजालमालोशि(श्लि)ताम्भोदकीर्णं नभः
स्फुटमदजननः प्रवात्यम्बु लब्ध दृप्तकादम्बर(?) वारिपूर्णाध्वगो मारुतः ।
जलधरसमये न मया हित्वा प्रयात प्रसीद प्रियेशास्थितोऽप्यमतः
नवजलधरवृन्दमालोक्य मा काङ्क्षने तत्परश्चण्डवृष्टिप्रयाते ॥

आह च एतावन्तः मध्यलघुत्रिका इत्यनुक्तत्वात् न ज्ञायन्ते इत्यत्रोच्यते । अतिच्छन्द इत्यनुवर्तनात् तत्रत्यप रमिताभिधानाच्च यावद्भिर्मध्यलघुत्रिकैरादिस्थैः षड्भिः लघुभिश्चोत्कृतिरतिक्रान्तो भवति सप्तप्रभृतिभिः मध्यलघुत्रिकैः षड्भिर्लघुभिश्च ।

गाथाऽप्रसिद्धा ॥३४॥

अस्मिन् शास्त्रे त्रितय सिद्ध जातयो नियता अपि छन्दांसि च इति । नियतमात्रा अनियताक्षराः जातयः । यथाहुः आर्याद्या (:) नियतमात्राणि नियताक्षराणि यानि यथा तानि उद्गतप्रभृतीनि । नियताक्षराणि अनियतमात्राणि छन्दांसि तानि गायत्रीप्रमुखानि च । तस्मात् त्रितयादन्यथा यो दृश्येत श्लोकैः सा गाथा नाम भवति । यथा—

युधिष्ठिरो धर्ममयो महाद्रुमः स्कन्धोऽर्जुनो भीमसेनोऽस्य शाखा ।
माद्रीसुतौ [1]पुष्पसमृद्धिरेव मूलं कृष्णो ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च ॥

इति रत्नमञ्जूषिकायां छन्दोविचित्या भाष्यतः सप्तमोऽध्यायः ॥

---

[1] पुष्पफले समृद्धिरेव A.

अष्टमोऽध्यायः

अत्र गायत्र्यादिपूत्कृतिपर्यवसानेषु तनुमध्यादिभुजङ्गविजृम्भितपर्यवसानानि वृत्तानि उपदिष्टानि। किन्तु एषु छन्दःसु तान्येव वृत्तानि अन्यान्यपि सन्तीति। अत्रोच्यते। अन्यान्यपि सन्ति तान्येतानि सन्तीति ज्ञापनार्थमयमुपायो विधास्यते ॥

मर्धे ॥१॥ न रूपे ॥२॥ नि द्वे ॥३॥ मि कृतिः ॥४॥

यस्य कस्यचिच्छन्दस समवृत्तानां जिज्ञासाया तच्छन्दसः पादाक्षराणि न्यस्य अर्धं त्यक्त्वा मर्धेति गुरुं न्यस्य, यत्रादौ राशिरर्धं न ददाति तत् रूपं त्यक्त्वा नरूपे इति लघु न्यस्य एव पुनः पुनः।

अन्त्यरूपम् ॥५॥

तेषां न्यस्तानां गुरुलघूनामन्त्ये अधस्तादेकं रूपं न्यस्य प्रतिलोमम्, अन्त्ये यदि लघुस्तत्र लघु नि (+नि) द्वे इति द्विगुणं कृत्वा यदि गुरुस्तत्र गुरौ मि कृतिरिति तावत्कृत्वः तच्छन्दसः समवृत्तान्येतावन्ति इति निर्दिशेत्। अत्राह। कथमेतदवगम्यते? पादाक्षराणि एव क्रियते गृहीत्वा न सर्वाक्षराणि क्रियन्ते इत्यत्रोच्यते। पादे गायत्री द्व अक्षरा इति प्रतिपादाक्षरपरिमाणमुक्तं पुनस्तानि चतुर्गुणितानि छन्दोक्षराणीति लक्षणतोऽवगम्यते। तत्र लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैव इति पादाक्षरेणैव प्रसिद्धिः। मर्धे नरूपे निद्वे मिकृतिरित्येतानि चत्वारि सूत्राणि युगपद् व्याख्यातानि ॥

तत्समम् ॥६॥

तान्येतानि अनेन क्रमेणाधिगतानि तस्मिन् तस्मिन् छन्दसि प्रवृत्तानि भवन्ति ॥

द्विः परस्य ॥७॥

यस्य कस्य छन्दसः समवृत्तानि द्विगुणितानि तस्मात्परस्य छन्दसः समवृत्तानि भवन्ति। तत्कथम्? जगत्या समवृत्तानि चत्वारि सहस्राणि षण्णवत्युत्तराणि तानि द्विगुणितानि अष्टसहस्राणि शतद्वानवत्युत्तराणि अतिजगत्याः समवृत्तानि भवन्ति।

इकृत्यूनं पूर्वेषाम् ॥८॥

इ इति पारिभाषिकसंज्ञा अष्टानां कृतिरिति लौकिकी। तावत्कृत्वः कृताः चतुःषष्टिरित्यर्थः। यस्य कस्य छन्दसः समवृत्तानि चतुःषष्ट्या वियुतानि तस्मात्पूर्वेषां सर्वेषां गायत्र्यादीनां समवृत्तानि। कथम्? जगत्या समवृत्तानि चत्वारि सहस्राणि षण्णवत्युत्तराणि तेभ्यः चतुःषष्टिं व्युदस्य शेषं चत्वारि सहस्राणि द्वात्रिंशदुत्तराणि गायत्र्यादीनां समवृत्तानि त्रिष्टुप्पर्यवसानानां भवन्ति।

समकृतिरर्धसमं च ॥९॥

समानि तानि तावत्कृत्वः कृतानि समार्धसमपिण्डो भवति। ततः समार्धसमानि व्युदस्य शेषाणि विषमाणि भवन्ति। सङ्ख्यासमाप्त्यनन्तरं प्रस्तार उच्यते। अनन्तरं नष्टमुच्यते। विज्ञातगुरुलघुकस्य वृत्तस्य संख्या-

मात्रेण गुरुलघुविन्यासनिर्णयो नष्टः । आह । गायत्र्यादीनां समवृत्तानि यानि गणिततोऽवगतानि तानि येन क्रमेण प्रत्यक्षतः उपलभ्येरन् स चापि क्रमोऽस्ति ? अस्ति इत्युच्यते । पृथिवीं समतलां कृत्वा परस्परविशिष्टगुरु-लघुविन्यासानि प्रस्तार्य दृश्यान्यनेन क्रमेण ।

म्नित्यधोधः ॥१०॥

मिति वक्रा रेखामालिख्य निति ऋज्वीं चाधोधः एकान्तरिते लेख्य यावत्संख्यापरिमाणमयं सर्ववृत्तानां प्रथमाक्षरविन्यासः ।

द्विर्द्विरितः ॥११॥

द्वितीयाक्षरस्थाने वक्रे द्वे द्वे ऋ(ज्वी)द्वे इत्यधोधः प्रस्तारयेत् । ततस्तृतीयाक्षरस्थाने वक्राश्चतस्रः ऋज्व्यश्च आ छन्दसः पादाक्षरपरिसमाप्तेरेष प्रस्तारक्रमः । अनेन प्रस्तारक्रमेण तानि वृत्तानि परस्परविशिष्टानि प्रत्यक्षतो दृश्यन्ते । अथ नष्टमाह ।

नर्धे ॥१२॥ सैकस्य म् ॥१३॥

इमे द्वे सूत्रे सह व्याख्यास्यामः । तेषु प्रस्तारितेषु मध्ये यद्येक विनश्यति तदेतावतिथमिति सङ्ख्यां ज्ञात्वा तावन्त्यक्षराणि न्यस्य अर्धं त्यक्त्वा नर्धे इति लघुं न्यस्य, यदार्धं न ददाति तदा रूपं प्रक्षिप्य अर्धं त्यक्त्वा सैकस्य मिति गुरुं न्यस्य एव पुनः पुनः यावत्छन्दसः पादाक्षरपरिमाण तत्तावतिथं वृत्तं तादृग्विन्यास भवति ।

अथ उद्दिष्टमाह । कश्चिद् ब्रूयात् । किंचिद्वृत्तमुद्देश्यमेतत् वृत्तमेतस्मिन् छन्दसि कथितमिति । तद्वृत्त प्रस्तार्य (+ अ)न्ते तदधस्तादेकमक्षरं यस्य अनेन क्रमेण कुर्यात् ।

नि द्वे ॥१४॥ मि चैकं त्यजेत् ॥१५॥

तमक्ष प्रतिलोममुच्चयेत् लघौ लघौ द्विगुणितं कुर्यात् । तथा गुरावपि । किञ्चान्यत् । गुरावेकमक्षरं त्यजेच्च यदागतं तावतिथ वृत्त छन्दःप्रस्तारमिति निर्दिशेत् । सूत्रद्वय युगपद्व्याख्यातम् ।

ददादि ॥१६॥

इति यथाक्षर एकद्वित्रीणि इत्येवमेकाद्येकोत्तर यावच्छन्दःपादाक्षरपरिमाण न्यस्य ततः सङ्ख्यां ज्ञात्वा तावन्त्यक्षराणि । सपूर्वमनन्त्यः तेष्वेकादिकेषु राशिषु पूर्वं पूर्वमविनष्टमेव परस्मिन्परस्मिन् प्रक्षिप्य वर्जयित्वान्त्यं अन्त्यं केवलं गृहीत्वा अतोऽन्यत्र स्थापयित्वा पुनश्च पूर्वं पूर्वं परस्मिन्परस्मिन् प्रक्षिप्य अन्त्यमन्त्यं केवल गृहीत्वा पूर्वपदं स्थापयेत् ॥

तद्दादिनः ॥१७॥

तये(थै)ता राशयोऽप्यागता एकलघुद्विलघुप्रभृतयो भवन्ति । आह । सङ्ख्यादीना पृथक् पृथक् अनुक्रमाण्युपदिष्टानि किं तथैवाक्रमेरन्, आहोस्विदन्योऽप्युपायोऽस्ति येनैकत्वेऽनुपक्रमोस्तीति । अस्तीत्युच्यते[१] ।

---

१ Here mss. B. ends.

द्वाद्विद्विः ॥१८॥

पूर्वकं न्यस्य तत्प्रतिराशयो द्विः कार्याः । एव प्रतिराशयो द्विगुणिताः कार्याः राशयस्तावन्तो यावन्ति पादाक्षराणि । तत् कथम् । पूर्वमेकं न्यस्य तत् प्रतिराश्यादिकृता द्वे द्विः कृत्वा ततः अष्टौ षोडशद्वात्रिंशत् इति । गायत्रीपादाक्षराणि षडिति षड् राशयः कार्याः ॥ इदानीं ग्रहणोपायो विधास्यते । कथम् ?

सैकं यत्र यावत्तत्र तावतिथे नः ॥१९॥

ते एकादिका राशय. पूर्वं स्थापिता अक्षरस्थापनीया. । यस्मिन् यस्मिन्स्थाने स्थिता एको वा द्वौ वा त्रयो वा चत्वारि वा पञ्च वा षडपि वा एकरूपसहिताया सख्या भवन्ति । तावतिथे वृत्ते तत्लघवो भवन्ति । तत्कथम् ? आद्यक्षरस्थाने एक प्रक्षिप्य द्वे ततो द्वीति वृत्ते आद्यक्षर लघ्विति निर्दिशेत् । तथा तथा प्रथम द्वितीयराशि त्रीणि सैकानि चत्वारि ततश्चतुर्थप्रथमद्वितीयाक्षरे लघू एवमाप्रस्तारावसानान्नेयमिह सख्यादीना चिन्तनाशे षडपि राशय. सहिता एकरूपयुतश्चतुःषष्टिर्भवन्ति ॥ ततश्च षष्ठं वृत्त सर्वलघ्विति सिद्धम् । तेन सर्वलघ्ववसानात् वृत्ताना चतुःषष्टिरिति वृत्तसख्योपलब्धा लघ्वक्षरसाधान् षडपि राशीनाश्रित्य प्रक्षेपभूतेनैकवृत्तरूपेण प्रथमलघु प्रस्तारयेत् ॥ पुनः प्रथमाक्षरे स्थानि एकस्मिन्प्रक्षेपभूत प्रक्षिप्य संजाते द्वे ततो द्वितीये प्रथमं लघुं प्रस्तारयेत् । पुनः द्वितीयाक्षरस्थाने ये द्व्यक्षरराशावेकं प्रक्षिप्य त्रीणि ततस्तृतीये लघु प्रस्तारयेत् । पुनः प्रथमद्वितीयराशिद्वये रूप प्रक्षिप्य चत्वारि ततश्चतुर्थं प्रथम द्वितीयं लघु प्रस्तारयेत् । एव पञ्चमाद्यानि यथा भवन्ति तथा प्रस्तारयेत् ।

इदानीं लघुगुरु लघुगुरु इत्येवं न्यासवृत्त कथमिति प्रपृष्टे एतद्वृत्तं प्रथमचतुर्थपञ्चमराशयः सहिताः सहैकरूपाः षड्विंशतिरिति निर्दिशेत् । एतदुद्दिष्टम् । अथेदानीं षड्विंशति· कीदृग् इति पृष्टे प्रथमचतुर्थपञ्चमराशय. सहिताः सहैकरूपाः षड्विंशतिर्जातेति प्रथमं च ।

श्रीमदनन्तनाथाय नमः ।

लगक्रिया सुधीः कुर्यात्तत्र येऽङ्का स्थिता. क्रमात् ।
तत्तदङ्कप्रसख्यातान् कोष्ठास्तेषा पुरो लिखेत् ॥१॥

सर्वगुर्वन्तसविधकोष्ठे तत्रैकमालिखेत् ।
तमेव द्विगुणीकृत्य तस्याधो द्व्यङ्कमालिखेत् ॥२॥

द्व्यङ्क च द्विगुणीकृत्य चतुरङ्कमथालिखेत् ।
तत्रैकमपनीयोर्ध्वपङ्क्तौ त्र्यङ्कमुपक्षिपेत् ॥३॥

त्र्यङ्कं च द्विगुणीकृत्य षडङ्क तदध. क्षिपेत् ।
तत्रैकमपनीयोर्ध्वां पङ्क्तौ पञ्च लिखेत्ततः ॥४॥

चतुरङ्कद्विगुणनात् अष्टौ च तदधः क्षिपेत् ।
तत्रैकापनयात् सप्ताप्यूर्ध्वपङ्क्तौ निवेशयेत् ॥५॥

एव द्विगुणितान् पञ्चादिकानन्तानधः क्षिपेत् ।
तानेवैकोनकानूर्ध्वपङ्क्तौ कुर्यादमुं विधिम् ॥६॥

लगक्रियाङ्कसंदोहसंख्या संपूर्णतो विधिम् ।
कुर्वीत तावदङ्कैश्च कोष्ठाः सर्वे स्युरङ्किताः ॥७॥

प्रस्तारो मेरुनामायमत्रच्छन्दोद्भवं भवेत् ।
एकलघ्वादिवृत्तानाम् उत्पत्तिस्थाननिर्णयः ॥८॥

एकद्व्यादिलगक्रियाङ्कसमसंख्यासु कोष्ठान्तरे-
ष्वेकादीन् द्विगुणानधो विरचयेत्ताश्चोर्ध्वमेकोनकान् ।
इत्यन्तावधि मेरुरेष महितः स्याद्वर्धमानाह्वयः
छन्दस्येकलगादिवृत्तजननस्थानं त्विह ज्ञायते ॥९॥

एकद्व्यादिलगक्रियासगणनामानप्रमाणालयैः
मेरुक्ष्माधरवद्विरच्य खटिकोत्कीर्णैस्तथाद्यालये ।
वृत्तान्यस्य तदादिम द्विगुणयंस्तस्याप्यधः स्थापयेत्
एकोनेन तदोपरि प्रतिलिखेदेवं हि मेरुक्रिया ॥१०॥

खण्डमेरुप्रस्तारो यथा–

सैकामेकगणोज्ज्वलामभिमतच्छन्दोक्षरागारिकाम्
एका श्रेणिमुपक्षिपन्नधरतोऽप्येकैकहीनाश्च ताः ।
ऊर्ध्वं द्विद्विगृहाङ्कमेकनमधोऽधः स्थानकेष्वालिखेत्
एकच्छन्दसि खण्डमेरुरमलः पुन्नागचन्द्रोदितः ॥११॥

एतद्यथोक्तक्रमेण प्रस्तारे कृते विवक्षितच्छन्दसः लगक्रियया सह ततः पूर्वस्थितसकलच्छन्दसां लगक्रियाः सर्वाः समायान्तीत्यर्थः ॥

प्रस्ताराः—

चतुर्थं छन्दः

१	१						
४	२	३	१	९			
६	४	६	७	१०	११		१३
४	६	१२	१४	१५			
१	६						

अधमेरुः

१	४	६	४	१
१	३	३	१	
१	२	१		
१	१			
१				

पञ्चमं छन्दः मेरुप्रस्तारः

१	१									
१	२	३	५	९	१७					
१०	४	६	७	१०	११	१३	१८	१९	२१	२५
१०	८	१२	१४	१५	२०	२२	२३	२६	२७	२९
५	१६	२४	२८	३०	३१					
१	३२									

NOTES.

[NOTE. – In the graphical representation, I stands for a short letter and S for a long one.]

ADHYĀYA I.

Sūtras 1-10: These explain the Saṃjñās or the technical terms employed by our author to represent the eight Akṣara Gaṇas or groups of 3 letters each, first employed for scanning a line of Varṇa Vṛttas by Pingala. Our author uses a double set of these terms one consisting of consonants and another of vowels alone. The last vowel and the last consonant in each of the first eight Sūtras stand for the metrical group of short and long letters represented by the word of which the Sūtra consists. Thus क् or आ stands for a group of three long letters and so on (see Sūtras 9 and 10). Similarly, the 2nd consonant in each of the first four Sūtras and the 1st consonant in each of the first two Sūtras stand for a metrical group of short and long letters which is represented by that part of the Sūtra which ends with that consonant. Thus य् stands for a group of two long letters and म् stands for a single long letter (see Sūtra 10 and commentary). The following is a full list of such terms with their equivalents employed by Pingala wherever possible —

क् or आ = SSS = म् of Pingala
च् or ए = ISS = य् ,, ,,
त् or ओ = SIS = र् ,, ,,
प् or ई = IIS = स् ,, ,,
श् or अ = SSI = त् ,, ,,
ष् or उ = ISI = ज् ,, ,,
स् or ऋ = SII = भ् ,, ,,
ह् or इ = III = न् ,, ,,
य् = SS, र् = IS, ल् = SI, व् = II.
म = S = ग् of Pingala, न = I = ल् of Pingala.

The last two symbols, namely those for single long and short letters, clearly show the influence of Pingala's मगण and नगण representing all long and all short letters respectively.

S. 11 —Even a short letter (ऌ) is treated as a long one (ग) when it is followed by a conjunct consonant (संयोग). According to the commentator, the word अपि shows that the rule is optional, so that sometimes, the short letter does not become long even when followed by a conjunct consonant. It also suggests that a long letter is ordinarily equal to two short ones.

S 12 —At the end of a line, a short letter is considered as equal to a long one metrically

S 13 —This however, is not applicable to short letters standing at the end of *odd* lines of the Āryā and such other metres The illustration No. I given for Sūtra No 11 (eleven) serves also for this rule, says the commentator, for, the short letter ण occurring at the end of the 3rd line of the stanza which is in the Āryā metre is not to be considered as long

S 14 —The letters ऌ, द्वा, त्रि, ची etc respectively represent the numbers 1, 2, 3, 4 etc. This is an important innovation introduced by our author Earlier and later writers employ popular terms signifying a definite number such as *samudra* standing for 4, *nayana* standing for 2 and so on.

S. 15–16 —Sometimes the letter ण् is added to this letter ऌ, द्वा, त्रि etc (thus ऌण् द्वाण्, त्रिण् etc.) as a mere ornamental appendage, but this is not always done

S. 18–19—These two Sūtras refer to the Yati, which ought to be agreeable to the ear It always occurs at the end of a line, but sometimes even in its middle. I am unable to understand fully these two Sūtras with their Bhāṣya. It is quite likely that what is shown as the Bhāṣya by my manuscripts is a part of the Sutras themselves, here. For a further exposition of the rules about Yati, see Halāyudha, on Pingala's Chandas, 6 1 (N S P. 3rd edition, pp. 100–103).

S. 20 24 —These 4 Sutras enumerate the broad divisions of the Varṇa Vṛttas, beginning with Gāyatrī having 6 letters in each of its four lines and ending with Utkṛti having 26 letters in each of its four lines It deserves to be noted that our author does not define the earlier classes of metres, i e, those that contain from 1 to 5 letters in each of their four lines. In this he follows Pingala and Jayadeva. Even Bharata enumerates these five classes only

under the Prākrta metres in ch. 36 (but not under Sanskrit metres in ch. 16) meaning thereby that they were not current in Sanskrit poetry as a rule. Prākṛta metricians, who also write on the Varṇa Vrttas seem to have first introduced and illustrated them Thus Virahānka, and probably also Svayambhū, define these five classes among the Varna Vrttas. They are then followed by Kedāra and Hemacandra, by whose time their definition seems to have already come in vogue.

S 25·—This Sūtra mentions a special term namely ग् for a Mātrā Gana of four Mātrās The Mātrā Gaṇas are needed for scanning the Mātrā Vrttas like the Āryā In making use of only one Mātrā Gana, namely, the Caturmātra, our author again closely follows Pingala As a matter of fact, all writers on Sanskrit prosody including Hemacandra have not made use of any other Mātrā Gana in defining the Sanskrit Mātrā Vrttas For this and the next Sūtra, compare Pingala, 4. 12–13.

S 26 —This Sūtra gives the five different kinds of the Caturmātra Ganas in view of the short or long letters that may be employed in them. They are — य्=SS, ई=IIS, ष्=ISI, भ=SII, and न्+ल=I,III. Three of these are already noticed among the 8 Aksara Ganas, since they contain three letters each The first and the last are new, since they contain 2 and 4 letters respectively.

ADHYĀYA II. *

Pingala has defined the Āryā group and the other Mātrā Vrttas in one chapter viz. the 4th. Really speaking, Sanskrit Mātrā Vrttas consist of three main groups, namely the Āryā group, the Vaitālīya group and the Mātrāsamaka group. Out of these, the Āryā group and the Mātrāsamaka group are groups of pure Mātrā Vrttas, where a definite number of Mātrā Ganas, kept separate from each other by the avoidance of a long letter at their junction, is required. The third Group is a group of metres which are called Mātrā Vrttas, because in them a definite number of Mātrās, and not letters are required to be employed in a line. These Mātrās, whatever their number, are not rigidly divided into a number of definite groups as in the case of the Āryā and the Mātrāsamaka. Only, there are

restrictions about the introduction or avoidance of short and long letters for representing a particular Mātrā or Mātrās.

Out of the three groups the Āryā group consists of metres of two lines while the Vaitālīya group consists of metres of four lines, out of which the 1st resembles the 3rd and the 2nd resembles the 4th They are the Mātrā Vṛttas of the Ardhasama type. The third group i, e, the Mātrāsamaka group, on the other hand, contains metres each of which consists of 4 lines of the same type and length. Our author has separated the last two groups (of metres of four lines each) from the first group and treated them in the third Adhyāya On the other hand, he has picked out the group of the Ardhasama Varna Vṛttas beginning with Upacitraka from its proper place in the midst of the Varna Vṛttas—In Pingala, they are treated after the Visama and before the Sama Vṛttas of four lines each—and tacked it on to the Āryā group in Adhyāya second Evidently he has done this because in both these groups, the *full half* of a stanza, whether it consists of one line or of two, has to be defined, whereas, in all other metres, including even the Vaitālīya group, only *one fourth* of a stanza is required to be defined, together with a few peculiarities of the odd or the even lines in the case of the Ardhasama Mātrā Vṛttas, other things being common to all the four lines. Thus in the 2nd chapter of our book, the Adhikārasūtra is *ardhe* while that in chapters 3 to 7 it is *pāde*

S 2-3 —In each half of the Āryā, there are seven (ᳲ) Caturmātra Ganas (ग॰) and one half more, among these seven, only those which occupy even places (i e,) 2nd, 4th and 6th can be of ज (ISI) type, but those in odd places must never be so. See for the same rules Pingala, 4 14-15.

S. 4-8 —The 6th Caturmātra in the first half is either of the ज (ISI) type or of the लि (I,III) type. If it is the latter, a new word must be commenced with the 2nd Mātrā, the earlier word being finished with the 1st. If the 7th Caturmātra (ल्) be of the लि (IIII) type, a fresh word must be commenced with the very first Mātrā, the earlier word being completed with the last Mātrā of the 6th Caturmātra Gaṇa. This same rule holds good in the case of the 5th Caturmātra Gaṇa (इण्) in the second half of the Āryā

(फार्थे). If it is of the नि (I,III) type, a fresh word must be commenced with its very first Mātrā. In the second half of the Āryā the 6th Gana (इण्) is not a Caturmātra, but consists only of a single short letter (न् एन). For all these rules, compare Pingala, 4. 16-21.

S. 9-10 —That Āryā is called Pathyā, whose odd lines i e, 1st and 3rd consist of three Caturmātra Ganas only. That which is not so is called Vipulā These two Sūtras which resemble Pingala 4. 22-23 furnish an interesting commentary on the controversy about the number of lines in the Āryā metre. According to these rules, if a word is finished with the 3rd Caturmātra in the halves of the Āryā, the Yati is naturally introduced there and the half becomes automatically divided into two lines. In such cases, i. e, where both the halves are thus divided into two lines each, the Āryā must be considered as a metre of four lines. But if the end of the 3rd Caturmātra does not synchronise with also the end of a word in either or both the halves of the Āryā, the Yati is not introduced at the end of the 3rd Caturmātra, since the word, which is commenced but not finished in it, must be completed before a metrical pause is allowed. It is in such cases, where a natural Yati or metrical pause is not introduced at the end of the 3rd Caturmātra owing to the incomplete utterance of a word, that the halves of the Āryā are not felt as divisible into two lines each and consequently Āryā is felt and therefore regarded as a metre of two lines Thus then the Pathyā Āryā is a metre of 4 and Vipulā Āryā a metre of 2 lines. But since there is no compulsion about the finishing of a word at the end of the 3rd Caturmātra, the Āryā on the whole, has been regarded as a metre of two halves i. e, two lines, by the metricians, like Pingala and others.

It is however, noteworthy that commentators usually regard Pathyā to be the normal type and Vipulā to be the exceptional one They therefore, regard Vipulā (and not Pathyā) to be of three kinds i e. Mukha, Jaghana and Ubhaya Vipulā, according as the characteristic of the unfinished word is found existing in the 1st or the 2nd or both the halves, See Halāyudha on Pingala, 4·23. Both Pingala and our author are silent about these divisions of Vipulā, showing thereby that perhaps by their time the public opinion had not yet definitely swung in favour of the view which regarded the Āryā as a metre of four lines.

S. 11–13 —An Āryā is called Capalā when the groups त् (SIS), ए (ISS), न् (I) and औ (SIS) follow in succession after the 2nd Mātrā of the 1st Caturmātrā (गर्धे), or in other words as it is put by Pingala, 4 24, when the 2nd and the 4th Caturmātras in each half are both preceded and followed by a long letter each, and are themselves of the प् or ज type (ISI) i e, the जगण of Pingala. If this characteristic is found in the 1st half, the Āryā is called Mukha Capalā, if in the 2nd, it is called Jaghana Capalā, if in both, it is called Mahā Capala See Pingala, .4. 25-26. The last variety is not mentioned by our author expressly, nor by the commentator. Each of these three kinds of Capalā are possible in Pathyā as well as in the three Vipulās Thus we have 4 × 3 + 4 = 16 varieties of Āryā, see Halāyudha on Pingala, 4 20 (N S. P. 3rd edition, p 51)

S. 14 —If in the second half of the Āryā, the 6th (षण्) Gana is a full Caturmātra and does not consist of a single short letter, or in other words, if the 2nd half is similar to the 1st, the Āryā is called Gīti, cf Pingala, 4.28 In this Sūtra, the words जघने च are to be supplied from Sūtra 13 All the rules applicable to the 6th Caturmātra, mentioned above in Sūtras 4 and 5 are also applicable here as the commentator reminds us

S. 15 —If the 8th Gana (दृण्) in the Gīti is a full Caturmatra (and not a half one), the same is called Āryāgīti. In this Sūtra, the words पूर्णश्चेत् षण् are to be supplied from the last Sūtra, so that S 15 literally means 'If the 6th and also the 8th Gaṇas are full Caturmātras the Āryā is called Āryāgīti'. Compare Pingala, 4. 31.

Other metres derived from the Āryā, like Upagīti and Udgīti (compare Pingala 4 28, 29) are not mentioned by our author nor by his commentator, and strangely enough, the section on Āryā is brought to a conclusion with the Galitaka which has no connection with the Āryā nor is it a metre of two lines or halves. The only possible connecting link between the Āryā and the Galitaka is that the lines of both are made up of a definite number of the Caturmātra Ganas. None of the Mātrā Vṛttas from the Vaitālīya group have their lines thus composed. Really speaking, Galitaka is not a Sanskrit metre; at least it is not known as a Sanskrit metre to older Sanskrit metricians. Even Hemacandra who first mentions it, counts it among the Prakrit metres; besides, according

to him Galitaka is rather a classname of Prakrit metres of a particular type. See Hemacandra, Chandonuśāsana (JBBRAS. 1943) IV. 17 ff. But the Prakrit merte which exactly corresponds to our Galitaka is Lalitā of Virahānka, Vṛttajātisamuccaya (JBBRAS. 1929) IV. 60. In any case, it is very difficult to guess the reason for which the Galitaka is regarded as a Sanskrit metre and further why it is defined at this place. The author, indeed, must have felt the incongruity of this metre coming under the 'adhikāra' of *'ardhe'* and so he has added the word *pratipādam* in its definition.

S 16=A Galitaka stanza has four lines, each containing five and a half Caturmātras of any kind. The illustration by the commentator looks like a quotation.

Hereafter, in Sutras 17–18, the author defines the Ardhasama Varna Vṛttas for reasons suggested above in the introductory note to this chapter Each definition is made up of a pair of groups of symbols, the first of which gives the composition of odd lines, while the 2nd gives that of the even ones I shall explain the definitions graphically as well as by giving the euqivalent Aksara Ganas according to Pingala's system since this is very generally known. In showing the Gaṇas, I shall use full letters in the place of consonants for the sake of convenience

S. 17—उपचित्रक · प, ई, व, ओ, ल, उ, ष, ए (ससस लग, भभभगग).
=IIS, IIS, II, SIS , SI, ISI, ISI, ISS. See Pingala, 5. 32.

S. 18—द्रुतमध्या · ल, उ, ष, ए, ह, उ, ष, ए (भभभगग नजजय)
=SI, ISI, ISI, ISS, III, ISI, ISI, ISS. See Pingala, 5 33

S. 19 —वेगवती : न, उ, ष, ए, ल, उ, ष, ए (सससग, भभभगग).
=I, ISI, ISI, ISS, SI, ISI, ISI, ISS. See Pingala 5. 34.

S 20:—भद्रविराट् य, ई, र, ए, क, ई, र, ए (तजरग, मसजगग).
=SS, IIS, IS, ISS, SSS, IIS, IS, ISS. See Pingala, 5. 35.

S. 21.—केतुमती : न, उ, स, ए, क, उ, व, ए (सजसग; भरनगग).
=I, ISI, SII, ISS, SI, ISI, SII, ISS. See Pingala, 5. 36.

S. 22.—आख्यानिका स, अ, र, ए, ष, अ, र, ए (ततजगग, जतजगग).
=SSI, SSI, IS, ISS; ISI, SSI, IS, ISS. See Piṅgala, 5 37.

Both the mss. drop the illustration of Ākhyānikā and the definition of Viparita Ākhyānikā The verse यदाह etc. is an illustration of the latter, for whose definition see Piṅgala, 5 38.

S. 24 —हरिणीप्लुता : व, ऋ, स, औ इ, ऋ, स, औ (ससलग, नभभर)
= II, SII, SII, SIS, III, SII, SII, SIS. Compare Piṅgala, 5, 39.

S 25 —मालभारिणी . व, ऋ, त, ए; ष, ऋ, त, ए, (ससजगग, सभरय).
= II, SII, SIS, ISS, IIS, SII, SIS, ISS. See Hemacandra, N.S P. edition, 1912, 3. 17. This is not mentioned by Piṅgala or Kedāra.

S. 26 —अपरवक्त्रः व, इ, ष, औ, इ, उ, ष, औ (ननरलग, नजजर).
= II, III, ISI, SIS, III, ISI, ISI, SIS. See Piṅgala 5 40.

S. 27 —पुष्पिताग्रा इ, इ, त, ए, ?, उ, न, त, ए (ननरय, नजजरग).
= III, III, SIS, ISS, III, SIS, I, SIS, ISS See Piṅgala, 5. 41.

S 28 —यमवती त, उ, त, न, औ, र, उ, त, र, ए (रजरजग, जरजरग).
= SIS ISI, SIS, I, SIS, IS, ISI, SIS, IS ISS
This is almost the same as यववती of Piṅgala, 5. 42, only our यमवती has one long letter more, at the end of the odd lines

S 29 —शिखा 13 व, प, 14 व, प व = II, प = ISS. Thus 13 व and प make 28 short letters followed by a long one in the odd lines. Similarly 14 व and प make 30 short letters followed by a long one, in the even lines. See Piṅgala, 5. 43. Piṅgala mentions also Khañjā which is just the reverse of Śikhā, our author does not mention it The commentator too is silent about it.

ADHYĀYA III.

This Adhyāya defines the Sanskrit Mātrā Vṛttas belonging to the Vaitālīya and the Mātrāsamaka groups. Every metre of these

groups consists of four lines, though in the case of the former group, the lines are not all of the same kind and length. So the author begins with the Adhikāra Sūtra '*pāde*' and gives the definition of a single line, mentioning at the same time the partial difference in the structure of some, wherever it exists

S. 2-4·—These Sūtras give the composition of the concluding portion of all the lines of Vaitālīya, Aupacchandasika and Āpātalikā. It is respectively ल, औ (SI, SIS), ल, ए (SI, ISS), and त, ए (SIS, ISS). The mss. do not contain the illustration of Vaitālīya and the definition of Āpātalikā. I have reconstructed the latter by pure guesswork See Pingala, 4. 32-34.

S. 5 and 6 —These two Sūtras give the composition of the remaining portion of the lines, both odd and even, of the three metres to which this portion is common Thus Sūtra 5 lays down that the odd lines shall have 6 Mātrās (ऋ न —न् is a short letter and also 1 Mātrā) in it But these short letters or Mātrās must always be used in pairs, and not singly or in groups of 3 or 5. In effect this restriction means that the 2nd and 3rd, 4th and 5th and 6th and 7th Mātrās at the commencement of a line must not be combined into a long letter. Sūtra 6 enjoins that the even lines shall have 8 short letters or Mātrās in this portion at the commencement of the lines of these metres. But in any case 8 short letters *in succession* shall not be employed there. According to Pingala, 6 short letters in succession are to be avoided in the case of the even lines, and Kedāra agrees with Pingala. The word कल्पम् in the last Sūtra is also to be understood here, so that the restriction equally applies to all lines whether odd or even. See Pingala, 4 34-36.

S. 7 :—Supply वैतालीय from S 2, शेषे from S. 5 and युजो· from S. 6 in this Sūtra. So that it means. If in this porton, a long letter (म्) occurs after the 3rd Mātrā (त्रिण·) in the even lines, so as to combine the 4th and the 5th Mātrās, a Vaitālīya is called Prācyavrtti See Piṅgala, 4. 37, whose wording is slightly different.

S. 8.—A Vaitālīya is called Udīcyavrtti, when a long letter is employed after the 1st Mātrā (वण्) in the odd lines. Supply वैतालीयं (S. 2), शेषे (S. 5) and म् (S. 7) in this Sūtra to complete the sense Compare Pingala, 4. 38.

S. 9 —If both the characteristics mentioned in S. 7 and 8 are simultaneously found in a Vaitālīya, it is called Pravṛttaka. See Piṅgala, 4. 39.

S 10–17·—These 8 Sūtras define the six metres belonging to the Mātrāsamaka group. For all these see Piṅgala, 4 42–47. The order in which these six are defined is different with different authors according to their own convenience

S 10-12 —There are four (दो) Caturmātra groups (ग्=a Caturmātra group, see above I. 25) in each of the four lines of the Mātrāsamaka. Out of these four, the first (दण) must not be of the ज (ISI) type and the third (दिण्) must be of the ई (IIS) type. The condition about the 1st Caturmātra is actually mentioned by our author though it seems to be implied by Pingala and others. Pingala's commentator Halāyudha supplies शेषे परेण युङ् न साम्म in the definition of Mātrāsamaka too which would mean that the ज group (ISI) which 'combines the even Mātrā with its successor into a long letter' is to be avoided in all the four places of the Mātrāsamaka line The restriction about the 1st group is, however, mentioned by writers on Prakrit metres as well, like Hemacandra (3.65) and author of Kavidarpaṇa (II 19) As regards the restriction about the third group, Pingala and others simply lay down that the 9th Mātrā shall always be represented by a short letter But when we remember that when the 3rd group happens to be of any kind other than ई, the metre is either called Upacitrā or Vānavāsikā (see Sūtras 13-14 below), we must conclude with our author that in Mātrāsamaka, it must be of ई (IIS) type only

S. 13-14 —When the third group of the Mātrāsamaka is either य (SS) or ऋ (SII), it is called Upacitrā, but it is called Vānavāsikā, when the thrid group is either ज (ISI) or नि (I,III).

S 15-16·—The mss. drop the illustration of Vānavāsikā and the definition as well as the Bhāṣya of Viśloka I have reconstructed the 15th Sūtra and its Bhāsya from the Bhāṣya on S. 16. If the 2nd group in the Mātrāsamaka is ज (ISI) or नि (I,III), it is called Viśloka. If the 3rd group in the Viśloka is either ई (IIS), or ज (ISI) or नि (I,III), it is called चित्रा. In S. 16, we must supply दाणु णिच from S. 15, as is shown by च. पुनि = प, ज, न, ई, (IIS, ISI, I,III). See Pingala, 4, 43-46.

S 17 :—When the four Caturmātra groups are of any kind whatsoever without restriction, we get a Pādākulaka, which word literally means 'a promiscuous mixture of the lines' of Mātrāsamaka and its derivative metres See Pingala, 4. 47.

S. 18 – The wording of the Sūtra is not clear to me even with the help of the Bhāṣya Gītyāryā has four lines, each containing 16 Mātrās, all of which are represented by short letters. Jayadeva definitely states that his Acaladhṛti is the Gītyāryā of Pingala Similarly Śikhā and Cūlikā (S. 19-20) of Pingala and our author are called Anangakrīḍā and Atirucirā by Jayadeva and Kedāra.

S. 19 :—When the Gītyāryā has the first two lines containing all long and the last two containing all short letters, it is called Viśikhā, this is called (Saumyā) Śikhā by Piṅgala, 4 51 Our author does not mention the opposite case which according to Pingala is (Jyotiḥ) Śikhā. Both Gītyāryā and Viśikhā are Sama Catuṣpadīs, whereas the Śikhā mentioned above at 2. 28 by our author is an Ardhasama Catuṣpadī. To bring out this distinction, our author calls one Śikhā and the other Viśikhā. Pingala, however, has kept the same name Śikhā for both, at 4 49-52 and 5 43-44.

S. 20.—Cūlikā is a Dvipadī and that too of the Ardhasama type. It has been mentioned here probably under the influence of Pingala Besides, the name Viśikhā which suggests an improvement over Pingala, must have reminded him of the Śikhā, with which the Cūlikā is connected. The Cūlikā Dvipadī is equal to a half of the Śikhā mentioned above at 2. 28 Compare Pingala, 4 52. Had convenience been the consideration for our author, he would have defined it just after Śikhā at 2 28 above.

S. 21-24 - The author now reverts to the Mātrāsama Catuṣpadīs, and so he wants us to supply the word म from S. 10 above. Nṛtyagati has five Caturmātras in each of its four lines. Out of these, the 3rd and the 5th must consist of two long letters each, and the Yati must occur at the end of the 3rd Gaṇa. This definition of Nṛtyagati entirely agrees with that of Hemacandra (cf. N. S. P. ed. of 1912, p. 26 b, lines 2-3). But our author's illustration is rather unsatisfactory as regards the Yati in particular. In Hemacandra's illustration the Yati is quite obvious so much so

that a line actually looks as if it consists of two separate parts of three and two Gaṇas.

S. 25 28.—Natacaraṇa is a metre of four lines, each having three Caturmātras of which the last two must always consist of two long letters each. Here the Yati must come after the second Gaṇa. The definition of Natacaraṇa too agrees wholly with that of Hemacandra, p. 26a, last line. Our author's illustration in this case is very unsatisfactory It does not observe the condition of the Yati, nor even of the last two Caturmātras consisting of all long letters. Hemacandra's illustration is quite appropriate, the Yati clearly dividing the line into two parts of 2 and 1 Gaṇas each. In effect Natacarana is only a shortened form of Nityagati, one Gana being removed from each of the two parts separated by the Yati in every line.

Both these metres have a clear association with dancing as their names and composition show No other writer on metres, so far as I know, has mentioned these two metres Hemacandra and our author agree in that the metres are Sanskrit metres Both mention them at the end of the Mātrāsamaka group. They do not seem to belong to the South, at least to Kannada prosody, since Jayakīrti does not mention them in the midst of other unusual Sanskrit metres which he defines at the end of ch 6 (of. JBBRAS. 1945, p. 12).

ADHYĀYA IV.

This chapter treats of the three groups of the Viṣama Vṛttas (the metres of dissimilar lines) namely, the Udgatā group, the Padacaturūrdhva (called Dāmāvārā in a very artificial manner by our author) group and the Anuṣṭubh Vaktra group. Our author has defined these groups in the descending order of the number of letters occurring in the first lines of their representatives. Thus the first line of Udgatā contains 13 letters, that of Dāmāvārā contains 8, and that of Anuṣṭubh Vaktra also contain 8 letters. The latter however, is considered as smaller than the former because, while the remaining three lines of the Anuṣṭubh Vaktra contain only 8 letters each, those of the Dāmāvārā contain 12, 16 and 20 letters in succession. It may be noted that these three groups are

treated in just the opposite order by Pingala, the Vaktra group being the first and the Udgatā group being the last.

The Anuṣṭubh Vaktra group of metres is treated as a group of Viṣama Vṛttas even though all the lines in a stanza in these metres contain 8 letters only and not less nor more, because, the construction of these lines is not uniform, ample freedom being allowed in the use of short and long letters except at certain places. Vaktra is really the class name of the metres of this group, Anuṣṭubh merely signifying that they belong to the Anuṣṭubh class out of the 26 classes of Vṛttas beginning with Gāyatrī and ending with Utkṛti It is in this Anuṣṭubh class alone that we find some metres which, through they contain the same number of letters in all their lines, must nevertheless be considered as Viṣama Vṛttas owing to the dissimilar structure of their lines. This Anuṣṭubh Vaktra is indeed a legacy from the Vedic Anuṣṭubh and appears to have been carefully preserved in Sanskrit prosody through its preponderating use in the epics and in the Smṛtis. It has been spared the methodizing touch of the Sanskrit prosodists owing to its exhalted position (being used in the epics and Smṛtis), though it has not wholly escaped it. Another legacy from the Vedic metres was the Triṣṭubh Jagatī stanzas which are seen in the epics and other post-vedic literature of that same period. The lines of these metres as a rule contain the same number of letters, but their structure in respect of the use of short and long letters is absolutely free as in the case of their Vedic ancestors. But these have finally yielded to the persistent labours of the classical prosodist and have almost disappeared from the field. Yet even they have left a trace of their once important position and freedom in the metres known as the Upajātis. Indeed the freedom that is allowed here is restricted only to the first letter, which may be either short or long. But it is clear that at one time such free metres belonging to the Triṣṭubh or Jagatī class were allowed under the name Upajāti as is seen from the remarks of Kedāra, VR. 3. 4 and Hemacandra, 3. 117. See also Halāyudha on Pingala, 6. 17.

These three groups of Viṣama Vṛttas stand mutually distinguished. We have already seen above the nature of the Vaktra group. The Dāmāvārā group is characterized by the preponderance of short letters, the last two letters alone being long; while the third or the Udgatā group has lines containing a definite number

of letters, of course mutually unequal, which must follow a given order of succession of short and long syllables

S. 1.—**उद्गता** The four lines respectively contain 1 **सजसल** (IIS, ISI, I, ISI), 2 **नसजगौ** (I, III, ISI, SIS), 3 **भनजलगाः** (SII, III, IS, IIS); 4 **सजसजग** (IIS, ISI, IIS, ISI, S). Pingala and others call this metre by the feminine name Udgatā of Pingala, 5. 25.

S. 2:—**सौरभक.** If the 3rd line of the Udgata were to contain **रनभगाः** (SIS, III, S, IIS), it is called Saurabhaka, cf. Pingala, 5. 26

S. 3 —**ललिता·** If the 3rd line of the Udgata contains **ननससाः** (i e. III, III, IIS, IIS) it is called Lalitā Pingala and Kedāra call it by the neuter name Lalita, cf Pingala, 5 27.

S 4 —**उपस्थितप्रचुपितः** The four lines of this metre respectively contain **मसजभगौ** (SSS, II, SIS, ISI, ISS) **सनजरगाः** (II, SII, IIS, IS, ISS,) **ननसाः** (II, III, I, IIS,) and **नननजयाः** (III, III, III, IS, IIS, S,. See Pingala, 5. 28. Some five letters are missing in the mss from the first line of the illustration Similarly, the word *yathā* at the end of the third line is redundant

S 5–6 —**वर्धमान** and **शुद्धविराडृषभं·** If the 3rd line of Upasthitapracupita is doubled in length, it is called Vardhamāna and if the same line contains **तजरा** (SS. IIS, I, SIS) instead of its usual letter-groups, it is called Śuddhavirādarṣabha

S. 7–10 —These Sūtras define the Padacaturūrdhva or Dāmāvārā group of metres As a matter of fact, our author has chosen only one of the metres (namely Āpīda, of this group which has four different varities according to Pingala) and given its 24 varieties obtained by a mutual exchange of places among its four lines. In the Padacaturūrdhva there is a complete freedom of choice of short and long letters in the lines, their number alone being restricted, according to Pingala and others, but in the other three, namely Āpīḍa and Pratyāpīḍa of two kinds, there is no such freedom and all letters must be short, except the first or the last two which must be long, as the case may be, see Pingala, 5. 20-23. Our author has chosen only the Āpīda from these as said above whose lines contain respectively 8, 12, 16 and 20 letters all of which must be short, except the last two which must be long. Our author lays down an additional condition that at the end of every four

letters there will be a Yati. By a mutual exchange of places among the four lines, 24 different varieties are obtained whose names according to our author will be obtained by putting together the last letters of the four lines in succession (5, 10).

Pingala mentions only three varieties of the Padacaturūrdhva (see Halāyudha on Piṅgala 5.24) according as the 1st line exchanges its place with the 2nd, the 3rd and the 4th lines, whose names he gives as Mañjarī (or Kalikā), Lavalī and Amṛtadhārā. Kedāra and others however, maintain that these three varieties are to be admitted only in the case of the Āpīḍa but not in that of the others. Jayakīrti, who calls the Āpīda and the two Pratyāpīdas by the names Padaruci, Anupadaruci and Atipadaruci, admits the varieties, namely Kalikā Lavalī and Amṛtadhārā in each of the three.

S. 11–12 —The author now takes up the Viṣama Vṛttas belonging to the Anuṣṭubh class. The general name of these metres is Vaktra See the introductory note on the three groups of the Visama Vrttas.

S. 13-14 —The two Caturmātras i e. स and न (SII and III) must not occur at the beginning of the lines of a Vaktra. This means ultimately that the 2nd the 3rd letters must not be short simultaneously. This condition is expressed in other words by Pingala, 5 10, who says that the ज (JIS) and the न (III) Gaṇas must be avoided after the first letter in every line. Similarly the group य (ISS) must always be used after the 4th letter (तोण) in all lines of the Vaktra.

S. 15-16 —These Sūtras tell us that if the ज (ISI) group is used after the 4th letter in the even lines of a Vaktra, it is called Pathyā Vaktra, but it is called Viparītapathyā Vaktra when this same group is used at the same place in the odd lines.

S. 17-18.—A Vaktra is called Capalā when the न (III) group is substituted for the usual य (ISS) group only in the odd lines after the 4th letter. It is called Vipulā when the 7th letter is short in the even lines. Eventually, Vipulā is the same as Pathyā-Vaktra which has the ज (ISI) group after the 4th letter in its even lines. But the alternative name is introduced here by the author, following the lead of Pingala, in order to mention Saitava's view about Vipulā. Saitava thinks that a Vaktra is called Vipulā, when short letter is

substituted for the long one which is enployed at the 7th place in *all* its lines (for, the group य i e, ISS is laid down after the 4th letter according to 4. 14 above), and not merely in the even lines as held by our author and Pingala. The name Vipulā has also to be introduced by our author, for defining what he calls Vimalā, Vikalā, Virālā and Viśālā, but which are respectively described by Pingala and his followers as Bha-vipulā, Ta-vipulā and Na-vipulā.

S. 20 —The Vipulā will have the letters म, क, र and शा substituted in place of the middle letter i e, पु of its name, according as the भ (SII), त (SSI), र (SIS) and न (III) Gaṇas are respectively substituted for the usual य (ISS) in *all* the lines of Vaktra after the 4th letter. We must supply दीर्घः from S 14.

The difference between the Capalā and Na-vipulā i. e, Viśālā is that in Capalā, न (III) occurs after the 4th letter only in the odd lines, while in the Na-vipula i e, Viśālā of our author, it so occurs in *all* the four lines. Like the other Ganas, even म or स (SSS or IIS) may occur after the 4th letter in a line, see Halāyudha on Pingala 5 19, and Hemacandra, (N. S P edi) p 22a, line 7ff There is a slight difference, however, between our Vimalā etc and the Bhavipulā etc, of Pingala and Hemacandra. The Gaṇas that are introduced after the 4th letters are to be for *all* the four lines according to our author, while they are to be introduced only in the odd lines, in the opinion of Pingala and Hemacandra, the even lines having the ज (ISI) or their जगण after the fourth letter.

It will thus be seen, that when all the different varieties of the Vaktra are taken together, there is complete freedom of employing a short or long letter at any place in the line as there was in the Vedic Anuṣṭubh, but there is only one important exception in the case of letters at the 2nd and the 3rd place. It is that two short letters must not be *simultaneously* used at the 2nd and the 3rd places in a line as said above in S. 13 and at Pingala, 5 10. Pingala 5 11 also lays down that in the case of even lines, a Ragaṇa (SIS) must not be used after the 1st letter. This in effect means that if the 2nd letter is long, the 3rd also must be long. This restriction however, is not admitted either by our author or by Hemacandra, or even by Kedāra and Jayadeva.

ADHYĀYA V.

S. 1 and 2.—Any metre belonging to any class from Gāyatrī to Utkṛti is called Samāna when long and short letters occur in regular succession in its lines. ग is a group of a long and a short letter (IS) On the other hand, any metre from the above mentioned classes i.e., from Gāyatrī to Utkṛti is called Pramāṇa when short and long letters are similarly employed. ल is a group of a short and a long letter (IS). Pingala and his successors apply the names Samāna and Pramāṇa—rather their feminine forms—to metres of the Anuṣṭubh class only and not to others. Our author stands alone in extending their application to all metres which belong to the classes beginning with Gāyatrī and ending with Utkṛti. Naturally therefore, he defines them here at the beginning of the treatment of metres belonging to the Gāyatrī and the other classes, whereas Pingala and others define them on the first occasion when they treat the metres of the Anustubh class, i.e., when they define the Anustubh Vaktra at the beginning of the Viṣama Vṛttas See Pingala, 5 6–8. The actual metre chosen for illustration by our commentator is of the Jagatī class

S. 3:—A metre containing any other arrangement of short and long letters in its lines and belonging to one of the classes from Gāyatrī to Utkṛti is called Vitāna. Pingala and others restrict this name too, to metres of the Anuṣṭubh class, while our author extends it to all the classes, like Samāna and Pramāṇa. As a matter of fact, Vitāna is a common name which is well applicable to all the following metres defined in chs. 5-7 of our work, since Vitāna is evidently intended to be a metre of similar lines of same length by our author and also by Pingala, even though the latter defines it at the commencement of his chapter on Viṣama Vṛttas. The illustration of our commentator is the metre of the Jagatī class having ज (SIS), न (III), भ (SII) and य (IIS) groups in each of its lines.

S. 4.—This is an Adhikāra Sūtra. The four metres defined in S. 5-8 belong to the Gāyatrī Class.

S. 5:—तनुमध्या: A line has त, य = SSI, ISS. See Pingala, 6.2.

S. 6:—शशिवदना: A line has न, य = III, ISS. Pingala does not

define the metre. Kedāra, 3.8 and Hemacandra, 2.39 call it शशिवदना, while Bharata, 16·34; 32. 80 calls it मकरशीर्षा.

S. 7 —सूचिमुखी : A line has स, आ (IIS, SSS). This is unknown to Pingala and Kedāra, Hemacandra, 2·50 calls it सूचीमुखी.

S 8.—शिखण्डिनी : A line has य, आ (ISS, SSS) Unkown to Pingala and Kedāra, but defined by Hemacandra, 2. 51.

S. 9 —Adhikāra Sūtra.

S. 10.—कुमारललिता : A line has ज, ई, म (ISI, IIS, S), See Pingala, 6 3.

S. 11 —चम्पक :—A line has त ई, म, (SSI, IIS, S). Unknown to Pingala and Kedāra, but defined as भ्रमरमाला by Hemacandra, 2·57 and Bharata, 16·20 and 32. 107.

S 13 —माणवकक्रीडितक : A line has म, ई, म, ई (S, IIS, S, IIS). Compare Pingala, 6. 4.

S. 14 —चित्रपद A line has म, ई, न, ए (S, IIS, I, ISS), see Pingala, 6. 5

S. 16·—भुजगशिशुसृता : A line has व, इ, न, आ, (II, III, I, SSS). Compare Pingala, 6 7.

S. 17:—तरङ्गवती : A line has ऊ, ओ, न, ओ (SI, SIS, I, SIS) The mss, actually read तानी, but the scheme contained in the illustration is as given by me, so I have conjectured the reading लोनी. This too is unknown to Pingala and Kedāra. Hemacandra, 2. 106 defines it under the name कामिनी.

S. 19 —शुद्धविराट् : A line has म, अ, प, ओ (S, SSI, ISI, SIS). Compare Pingala, 6. 9.

S. 20·—पणव : A line has म, अ, इ, आ (S, SSI, III, SSS). Compare Pingala, 6. 10.

S. 21 —उपस्थिता · A line has अ, उ, न, ओ (SSI, ISI, I, SIS) Compare Pingala, 6. 14.

S. 22:—रुक्मवती : A line has ऊ, ए, ऊ, ए, (SI, ISS, SI, ISS); compare Pingala, 6. 11.

S. 23:—मत्ता : A line has ग, म, न, य (S, SSS, III, ISS). Compare Piṅgala, 6. 13.

S. 25:—इन्द्रवज्रा : A line has त, त, र, य (SSI, SSI, IS, ISS). Compare Piṅgala, 6. 15.

S. 26 —उपेन्द्रवज्रा : A line has ज, त, र, य (ISI, SSI, IS, ISS). Compare Piṅgala, 6. 16.

S. 27:—इन्द्रमाला : Another name of the Upajāti Mandāramaranda-campū (Kāvyamālā ed. 1895, p. 8, line 7) calls it उपेन्द्रमाला ; but every other writer that I know of calls it उपजाति.

S. 28 —दोधक : A line has ह, ज, ज, य, (SI, ISI, ISI, ISS). Compare Piṅgala, 6. 13.

S. 29 —रथोद्धता : A line has र, न, ह, लौ (SIS, III, SI, SIS). Compare Pingala, 6. 22

S. 30 —स्वागता : A line has र, न, ह, य (SIS, III, SI, ISS). Compare Pingala, 6 23.

S. 31.—श्येनी : A line has र, ज, ह, लौ (SIS, ISI, SI, SIS). Compare Pingala, 6. 25.

S. 32 —सुभद्रिका : A line has ल, न, ज, लौ (II, III, ISI, SIS). Unknown to Piṅgala. Hemacandra, 2. 143 calls it भद्रिका.

S. 33 — सारिणी A line has र, न, र, लौ (IS, III, SIS, SIS). Unknwn to Piṅgala and Kedāra. Hemacandra's सारणी, 2. 153, is slightly different at the beginning. It has सजयलग (IIS, ISI, ISS, IS).

S 34 —वृत्ता : A line has ल, न, न, म (II, III, III, SSS). Compare Pingala, 6. 24.

S 35 —शालिनी: A line has ग, म, ह, ग, य (S, SSS, SI, SS, ISS). The Yati is after the 4th letter (ली). See Piṅgala, 6. 19.

S. 36 —वातोर्मिमाला . A line has ग, म, ल, ग, य (S, SSS, II, SS, ISS). The Yati is the same as in the last metre. Piṅgala calls this metre वातोर्मि (6. 20) and mentions another Yati after the 7th letter.

S. 37:—भ्रमरविलसिता : A line has ग, त, न, ई (SS, SSI, III, IIS). The Yati is after the 4th letter as before. See Piṅgala, 6. 21.

ADHYĀYA VI.

S 1.—This is the Adhikāra Sūtra for S 2-12.

S. 2.—भुजङ्गप्रयात A line has as many य (ISS) groups as would make it a Jagatī line i e, a line of 12 letters See Pingala, 6 37.

S 3.—तोटक · A line has similarly the स (IIS) groups. See Pingala, 6 31

S 4.—वंशस्था A line has ज, त, ज, र (ISI, SSI, ISI, SIS). See Pingala, 6 29

S 5.—इन्द्रवंशा : A line has त, त, ज, र (SSI, SSI, ISI, SIS) See Pingala, 6. 29

S 6.—वंशमाला. This is the name given to a metre whose lines are made up promiscuously by the mixture of the last two metres See above इन्द्रमाला, which is similarly made up by a mixture of इन्द्रवज्रा and उपेन्द्रवज्रा. Both इन्द्रमाला and वंशमाला are names formed with the help of the word-elements (i e इन्द्र and वंश) common to the names of metres from whose mixture they are made Older writers like Pingala and Hemacandra, give another significant name उपजाति, 'a secondary i e a mixed class' to both these metres and also to other metres which are similarly formed by a mixture of lines of metres whose length is the same See Halāyudha on Pingala, 6. 17, and Hemacandra, (N S P. ed) 1912, p 7a, lines 10-20 A mixture of lines different even in length in addition to structure is allowed by Hemacandra, but the view of Pingala and Kedāra is doubtful.

S 7.—प्रमिताक्षरा· A line has स, ज, स, स (IIS, ISI, IIS, IIS) See Pingala, 6 39

S. 8.—नवमालिनी: A line has न, ज, भ, य (III, ISI, SII, ISS). See Pingala, 6 43, who, along with Kedāra and Hemacandra, calls it नवमालिनी

S 9.—द्रुतविलम्बित· A line has न, भ, भ, र (III, SII, SII, SIS). See Pingala, 6.30

S 10.—वैश्वदेवी A line has म, म, य, य (SSS, SSS, ISS, ISS). The Yati occurs after the 5th letter (इ). See Pingala, 6.41.

S 11.—जलोद्धतगतिः A line has ज, स, ज, स (ISI, IIS, ISI, IIS). The Yati occurs after the 6th letter (ष). See Pingala 6.33.

S. 12:—कुड्मलदन्ती A line has इ, इ, क, ए (III, III, SSS, ISS). The Yati occurs after the 8th letter (कु). See Piṅgala, 6.32.

S. 14·—प्रहर्षिणी A line has क, इ, न, त, ए (SSS, III, I, SIS, ISS). The Yati is after the 3rd letter (कि). See Piṅgala, 7.1.

S. 15 —रुचिरा· A line has न, औ, थ, ई, न, औ (I, SIS, II, IIS, I, SIS) The Yati is after the 4th letter (वी) See Piṅgala 7.2

S 16·—मत्तमयूर A line has म, आ, ल, ए, न, ए (S, SSS, SI, ISS, I, ISS) The Yati is after the 4th letter as before See Piṅgala 7.3.

S 18 —वसन्ततिलक A line has म, औ, न, ई, प, ए, (S, SIS, I, IIS, ISS, ISS) See Piṅgala, 7, 8-10 Our author does not mention the other names of this metre, namely, सिंहोन्नता and उद्धर्षिणी given to it respectively by Kāśyapa and Saitava

S 19 —असम्बाधा A line has क, अ, इ व, आ, (SSS, SSI, III, II, SSS) The Yati is after the 5th letter (इ) See Piṅgala, 7.5.

S 20.—अपराजिता A line has इ, इ, म, उ, न, औ (III, III, S, ISI, I, SIS) The Yati is after the 7th letter (इ) See Piṅgala 7 6.

S 21 —रुजरमणीयः A line has ष, ई, त, व, ए (ISI, IIS, SIS, II, ISS) The Yati is after the 7th letter Unknown to Piṅgala and Kedāra, Hemacandra, 2.229, however, defines it.

S. 22 —प्रहरणकलिका(त): A line has व, इ, र, इ, न, ई (II, III, IS, III, I, IIS) The Yati is after the 7th letter Piṅgala, 7.7 calls it प्रहरणकलिता The wording of the Sūtra and the Bhāsya supports the name प्रहरणकलिका, which is also supported by Kedāra, but the illustration seems to support प्रहरणकलिता.

S. 24 —चन्द्रवर्त्मा : A line has व, इ, व, इ, व, ई (II, III, II, III, II, IIS) This is known as चन्द्रावर्ता to Piṅgala, 7 11 and as शशिकला to Hemacandra, 2 243 and Kedāra No fixed Yati

S. 25:—माला : If the चन्द्रवर्त्मा, which evidently has no Yati, happens to have a Yati regularly after the 6th letter (इ) in all lines, it is called माला. See Piṅgala, 7 12

S. 26:—मणिगणनिकरा The same चन्द्रवर्त्मा is called मणिगणनिकरा if it has the regular Yati after the 8th letter (इ) See Piṅgala, 7. 13.

S. 27:—मालिनी : A line has न, इ, र, अ, य, ए (II, III, IS, SSI, SS, ISS). The Yati is after the 8th letter. See Pingala, 7. 14. The illustration is from Bhāsa's Pratijñāyaugandharāyaṇa, II 3

S. 29·—कलना : A line has त, इ, इ, इ, न, ई (SIS, III, III, III, I, IIS). Unknown to Pingala and Kedāra; Hemacandra, 2 283 however, defines it The illustration seems to be from some drama. It mentions नन्द and वररुचि, the latter announcing his arrival to the former through the Pratihāri (Lalanā). The stanza seems to have been composed by the commentator as it contains the name of the metre artificially introduced, it is therefore possible that the author may have quoted it from his own drama

S. 30 —वेल्लिता · A line has प, ई, इ, इ, म, आ (IIS, IIS, III, III, S, SSS) The Yati is after the 6th letter Even this metre is known only to Hemacandra, 2 284.

S 31:—वृषभगजविलसिता . A line has स, ओ, न, इ, न, ई (SII, SIS, II, III, II, IIS) The Yati is after the 7th letter (इ) See Pingala, 7 15

S 32 —कोमललता : A line has क, अ, न, आ, र, ओ (SSS, SSI, II, SSS, IS, SIS) The Yati is twice, once after the 4th and then after the next 5th letter This metre too is known to Hemacandra, 2 285, alone.

S 34 —पृथ्वी . A line cotains ष, ई, ष, ई, र, ओ (ISI, IIS, ISI, IIS, IS, SIS) The Yati is mentioned after the 8th letter by Pingala, 7. 17 and his successors, but not by our author

S. 35·—हरिणी: A line has न, इ, क, अ, स, ओ (II, III, SSS, SSI, SII, SIS) The Yati is after the 6th letter. Compare Pingala, 7 16 who mentions a second Yati after the 10th letter.

S 36 —शिखरिणी: A line has र, आ, स, इ, ख, ई (IS, SSS, SII, III, SSI, IIS) The Yati is after the 4th letter. See Pingala, 7.20.

S. 37 —मन्दाक्रान्ता: A line has क, क्र, इ, अ, य, ए (SSS, SII, III, SSI, SS, ISS). The Yati is (after the 4th letter and then after the next 6th letter. See Pingala, 7.19.

S 38 —वंशपत्रपतित: A line has ब, उ, स, उ, इ, ई (SI, ISI, SII, ISI, III, IIS) The Yati is after the 10th letter. See Pingala, 7.18.

ADHYĀYA VII.

S. 1 —This is an Adhikāra Sūtra for Sūtras 2-3.

S 2 —कुसुमितलतावेल्लिता: A line has म, आ, ल, इ, न, अ, य, ए (S, SSS, SI, III, I, SSI, SS, ISS). The Yati occurs twice, first after the 5th letter and then after the next 6th. See Pingala, 7.21.

S 3 —वाचालकाञ्ची: A line has क, औ, सं, ए, त, औ (SSS, SIS, SII, ISS, SIS, SIS) The Yati is after the 11th letter. This metre is unknown to Piṅgala and Kedāra Hemacandra, 2.300 calls it काञ्ची, but says that others call it वाचालकाञ्ची

S. 5 —शार्दूलविक्रीडितः A line has म, अ, न, ओ, ब, ए, त, औ (S, SSI, I, SIS, II, ISS, SIS, SIS) The Yati is after the 12th letter See Pingala, 7 22

S 6 —वायुवेगा A line has म, अ, र, उ, प, इ, न, औ (S, SSI, IS, ISI, IIS, III, I, SIS) The Yati is after the 12th letter. This too is unknown to Pingala and Kedāra. Hemacandra, 2 322 alone defines it.

S 7 —माधवीलता: A line has क, औ, ल, इ, म, ई न, औ (SSS, SIS, SI, III, S, IIS, I, SIS) The Yati is after the 7th letter. Like the last, this is known only to Hemacandra, 2 232.

S. 9 —दीपिकाशिखा: A line has स, इ, च, इ, इ, र, औ (SII, III, ISS, III, III, SI, SIS). The Yati is after the 3rd letter and then again after the 6th thereafter This also is known only to Hemacandra, 2 343.

S 10 —सुवदना A line has य, अ, श, इ, ब, आ, न, ई (SS, SSI, SSI, III, II, SSS, I, IIS). The Yati is after the 7th letter. See Pingala, 7. 23

S 12 —स्रग्धरा A line has क, औ, म, इ, इ, अ, य, ए (SSS, SIS, S, III, III, SSI, SS, ISS). The Yati is after every 7th letter. See Piṅgala, 7. 25. Even though इ can be supplied here from S. 10, still the author has used the word इइ in this Sūtra to indicate that the अनुवृत्ति is allowed in metres belonging to the same class only and that it does not go beyond it. Thus our इइ can be supplied in the next Sūtra which belongs to the same Adhikāra i. e, Prakṛti.

S. 13;—कृष्णगति : A line has म, औ, न, अ, इ, न, उ, ब, औ (S, SIS, I,

SSI, III, I, ISI, SII, SIS) The Yati is after every 7th letter. Even this metre is known only to Hemacandra, 2. 346

S 14 —ललितविक्रम : A line has स, त, इ, त, इ त ओ (SII, SIS, III, SIS, III, SIS, SIS) The Yati is after the 10th letter. This too is known only to Hemacandra, 2 347

S 16 —मद्रक A line has म, ई प, ई, प, ई, प, ई, (S, IIS, ISI, IIS, ISI, IIS, ISI, IIS) The Yati is after the 10th letter as in the last metre See Pingala, 7 26.

S. 17 —शीर्षावि A line has क, ई, र, इ, त, इ, ल, ओ (SSS, IIS, IS, III, SIS, III, SI, SIS) The Yati occurs after the 12th letter Hemacandra, 2 357 alone, knows this metre

S 19 —वृन्दारक A line has र, इ, त, इ, त, ओ त, ओ (IS, III, SIS, III, SIS, SIS, SIS, SIS) No Yati is mentioned This metre too is known to Hemacandra, 2 364 only

S 20 —अश्वललित : A line has न, ई, प, ई, प, ई, प, ई (II, IIS, ISI, IIS, ISI, IIS, ISI, IIS) The Yati is after the 11th letter (दे) See Pingala, 7 27

S. 21 —मन्दक्रीडा: A line has क, आ, श, इ, इ, इ, न, ई (SSS, SSS, SSI, III, III, III, II, IIS) The Yati is after the 8th letter The second Yati after the next 5th letter is not mentioned by our author See Pingala, 7 28, Hemacandra, 2 359 Both call it मत्ताक्रीडा

S. 23 —तन्वी: A line has स, अ, इ, ई, स, रु, इ, ए (SII, SSI, III, IIS, SII, SII, III, ISS). The Yati occurs after the 12th letter (दे) See Pingala, 7 29

S 24 —विभ्रमगति· A line has क, ई, प, ई, श, अ, स, ओ (SSS, IIS, ISI, IIS, SSI, SSI, SII, SIS) The Yati occurs after the 12th letter as before Hemacandra, 2.371, who alone knows this metre, does not mention any Yati.

S 26 —क्रौञ्चपद. A line has ल, ए, ल, ए, न, इ, न, इ, न, ई (SI, ISS, SI, ISS, II, III, II, III, II, IIS) The Yati is after the 10th letter (वृ).
See Pingala, 7.30

S 27.—हंसपदा: A line has य, ई, य, ई, न, इ, न, इ, न, ई (SS, IIS, SS, IIS, II, III, II, III, II, IIS). The Yati is after the 10th letter as before. Unknown to Pingala and Kedāra. Hemacandra, 2. 374 and Kavidarpaṇa, 4.100 alone define it.

S. 29:—अपवाह : A line has म, न, न, न, न, न, न, न, न, मा (SSS, III, II, III, II, III, II, III, II, SSS). The Yati is after the 13th letter (णे). See Pingala, 7. 32.

S. 50:—आपीड : A line has स, इ, व, इ, न, अ, न, इ, न, ई (SII, III, II, III, SS, SSI, II, III, II, IIS). The Yati is after the 13th letter. Unknown to Pingala and Kedāra. Hemacandra, 2. 378, alone knows it but calls it आपीड and mentions the Yati after the 14th letter.

S 31 —भुजङ्गविजृम्भितः : A line has म, मा, त, न, न, न, र, स, न, गौ (SSS, SSS, SSI, III, III, III, S, ISI, I, SIS) The Yati is after the 8th and then after the next 11th letter She Pingala, 7, 31

S. 32 —अतिच्छन्दस् : When 8 more short letters (न् अष्ट) are added in the middle of the भुजङ्गविजृम्भित, it is called अतिच्छन्दस्. This metre is mentioned only by our author so far as I know करभ of Hemacandra, 2 386 contains 9 additional short letters in the middle of the भुजङ्गविजृम्भित.

S 33 —चण्डवृष्टिप्रयात : A line has ह, इ and (seven) त groups. (III, III and SIS seven times repeated) The number of the SIS groups must be such as would make the metre अतिच्छन्दस् i. e, a metre whose line is longer than that of the उत्कृति class of metres, and that number is seven See Pingala, 7 34, who mentions other kinds of the Daṇḍakas too Our author is silent about them

S 34 —गाथा is a common name applied to any other irregular metre which cannot be included under any of the classes discussed so far (अनुक्ता) The illustration is a stanza in the Triṣṭubh class, without any definite order of short and long letters and with one letter more in its first line. The stanza is from the Mahābhārata and is also quoted for the same purpose by Rāmcandra Kavibhāratī on Vṛttaratnākara, 5. 15. Pingala 8 1, Kedāra 5. 15, and Hemacandra, 7 73, all agree about the name Gāthā which is thus applicable to any irregular metre which has been sanctioned by ancient use in popular or epic poetry. The derivative meaning of the word Gāthā is 'what is sung' (from *gai* to sing).

9

ADHYĀYA VIII.

This Adhyāya treats of the six Pratyayas, namely, Prastāra, Nasta, Uddiṣta, Lagakriyā, Samkhyā and Adhvan I have explained these in full in my introduction to chapters V-VI of Virahānka's Vṛttajātisamuccaya, JBBRAS., Vol 18, 1932.

I INDEX OF VERSES.

श्लोकसूची

अंशुकवल्कटी	4. 15.	घननागपृष्ठे	2. 24.
अपावृतकटी	6 11.	चापेनतर्जूःसम-	7. 23.
अप्रकृष्यमभि-	6 29	चिरकालानुपचिता-	3. 13.
अप्रियमप्यव-	5. 14	चित्रं सुचिरं	7 12
अग्रसंकट-	5. 31	जगति वराहक्	2. 15.
अम्लानमाला	5. 27	जगति प्राधान्यं	5. 7.
अलकावकीर्ण-	6 7.	जगति इह जरा	5. 16.
अलं खलु सराम.	5 10	जातश्च न जय-	4. 4.
अवनिरलङ्कृत-	7. 20	ज्ञाने कृतसूर्यं	6. 10.
अशितपन	6. 8	तथा मकरकेतुमान्	5. 33
असावस्तं यातो	6 36	दिवि ज्वलतिरिति	3. 18
अहिनकुलमुखं	6 22	दृष्टेन्दुं प्रथम-	4. 5.
इह भवति हि	5 32.	देवेन्द्रोपि न दुःख-	2 14.
उपगतसलिलानां	6 12	द्रव्याणि भद्रे	6. 4
उपचितकमक्षय-	2. 17	धनं प्रदानेन	1 11.
उपेन्द्रवज्रायुध-	5 26	धर्मतीर्थकर-	5 30
ऊर्मिलोलशिरोरुहा-	4. 16	नटचरणादपि	3. 25.
एलकयान-	7 14.	नदति मदशिखी	7 33.
एवं प्रोक्तः कौञ्च-	7 32	न पात्रे प्रविश्यन्	6. 2.
कनकभूषण-	6. 9	नर उद्गतं कुल-	4. 1.
कन्याकन्यां	5 37	नरपतिविरहित-	2. 28
कमलदलनखा	6 20.	नवभिर्द्वारैरशुचि-	2. 2
कमलशिरस-	6. 25	न स्मरति किं	2. 16.
कर्णनिहितप्रियङ्गुः	2 13	नागो नागी नागो	7. 31.
कामविधाविच-	5. 28.	नारीणां या नलिन-	5. 23.
कुशाग्रदृष्टितमो-	3. 16	नीलीशोभित-	7. 3.
कुशाग्रमोहिताञ्ची-	3. 15	पणिहतकलशहस्ता-	7. 9.
कृतकर्मविपाक	2. 23.	परिणतकायित-	4. 2.
कृत्वा धर्मं धर्म-	6. 16	पर्जन्यः पिहितं	7. 5.
केयूरकुण्डलविभू-	2. 20.	पतितकलिभिः कीर्णं	6. 35.
गच्छति पुरः	2. 4.	पल्लवकुसुमपलाश-	3. 17.
गुरुतरभारविषम-	6. 26.	पाणिपादप्रस्तव-	5. 1.
गूढस्नायु-	6. 19.	पादपौरयवर-	7. 16.
गीतरूपमानताक्ष-	6. 31.	पादैः श्लिष्टैर्या-	3. 4.

पुष्पितनानानोकह- 5. 22
पृथुपीनमृदुश्रोणी 4. 18.
प्रक्षीणपूर्वार्जित- 5. 25
प्रलम्बबाहुस्सुबाहु 3. 9.
प्रस्वेदबिन्दुचित्रं 2 12
फुल्लैः पुष्पैः कोमल- 6 32
बलवाशयवान् 6. 30.
बहुविधनयवाद 4 9.
बहुधस्वं चारुमुखं 4 20.
भुग्नतुण्डं बेकरार्थं 4 20
भूत्वा शुद्धचिरा 5 19.
भोगवती 2 18
भ्रमरपरभृतो 2. 26.
मण्डलं शिव- 4 19
मतिद्युतिप्रभाव 5 2.
मत्तोन्मत्तान् पथि 6 37
मध्यंदिनोल्का 6. 5
मम हृदयसुरभिक्षं 6 27
मर्त्येषु कदाचित् 3 21
माद्रा सुसुतान 3 12.
मानवपतिरुरु- 7. 30
मानवा अवश्य- 2 27
मानुष्यं चलमल- 6 14
मान्धातैलवयाति 7. 6
मूको बधः प्रवृत्तिं 7. 13
मृद्वङ्गी मृदुललिता 5 20
यजितमीतं 7 26.
यतिस्तुतश्रि दश- 6. 15.
यत्नः सुमहान् 1 11
यदाहमैश्वर्य- 2. 22.
यमपार्थिवप्रथित- 2. 21.
यश्चानेकभवार्जितो 7. 17
या तरङ्गबुद्बुदो 5. 17.
या हत्वा वै 5. 36
युधिष्ठिरो धर्ममयो 7. 34.
येषा कुष्ठविकार- 7. 24.
यो भूतभव्य- 1. 1.
राज्यं चक्रार्हं 7. 2.
रूक्षपिण्डाग्रदशना 4. 17.
रोगश्वापदहिंस्र- 4. 6.
रोगा बहुप्रकाराः 2. 11.
ललितानि सुस्मित- 4. 3.
लोकान्परत्रोत्तम 6 6.
वज्रं तृणमपि स्यात् 5. 11.
वरवृषभगति 6. 24.
वरहयगज 3. 20.
वलिभिः पलितै 2. 29
वाक्यं मे शृणु 7. 29.
विद्युन्मदोन्मत्ता 7. 21.
विपुलाक्षिभुज- 3. 7.
विपुलागमबीत- 2. 10
विमुकुलिताया 5. 6.
विशालजघना 3 8
वीरविमलं 7 27.
वेश्या दृश्या 7. 27.
व्याघ्रीव जरा 5 21
व्याधिसहस्र- 6 38
शीर्णा बीजेन तुल्या 7. 9.
श्येनगृध्रवायसा 5 31.
श्रीमत्स्वपेषु मणि- 6. 18
संसारेऽपारत्वं 2 5
सर्वजगत्क्ष्यात- 5. 13.
सर्वभावविधि- 5. 29.
सिंहमत्स्य 4. 14.
सिंहस्कन्धः 3 19.
सिराविततमस्थि- 6. 34.
सुरेन्द्रैः पूज्येभ्यः 5. 8.
सुलक्षणविशिष्टः 6. 21.
सुलक्ष्माङ्गुलिबन्धन- 3. 3.
सेनापतिपुत्री 5. 5.
स्निग्धच्छवि 4 20.
स्फारितास्यं 4. 20.
स्वकर्मदक्षकार्य- 7. 19.
स्वयतोभिवदार- 6. 3.
स्वशिष्टुमनर- 2 25.

II INDEX OF NAMES OF METRES.

वृत्तनामसूची

अतिच्छन्दस्	7. 32	चपला आर्या	2. 11-13
अपरवक्त्र	2. 25	चपला वक्त्र	4. 17
अपराजिता	6. 20	चित्रपद	5. 14
अपवाह	7. 29	चित्रा	3. 16
अश्वललित	7. 20	चूलिका	3. 20
असंबाधा	6, 19	जलोद्धतगति	6. 11
आख्यानिकी	2. 22	तनुमध्या	5. 5
आपातलिका	3. 3	तन्वी	7. 23
आपीड	7 30	तरंगवती	5. 17
आर्या	2. 1-8	तोटक	6. 3
आर्यागीति	2 15	दामावारा	4. 7
इन्द्रमाला	5 27	दीपार्चिः	7. 17
इन्द्रवंशा	6. 5	दीपिकाशिखा	7. 3
इन्द्रवज्रा	5. 25	दोधक	5. 28
उदीच्यवृत्ति	3. 8	द्रुतमध्य	2. 18
उद्गत	4. 1	द्रुतविलम्बित	6. 9
उपचित्रक	2. 17	नटचरण	3 25
उपचित्रा	3. 13	नृत्यगति	3. 21
उपस्थितप्रचुपित	4. 4	पणव	5. 20
उपस्थिता	5. 21	पथ्या आर्या	2 9
उपेन्द्रवज्रा	5. 26	पथ्या वक्त्र	4. 15
औपच्छन्दसिक	3. 4	पादाकुलक	3 17
कथागति	7. 13	पुटा	6. 12
कुमारललिता	5. 10	पुष्पिताग्रा	2. 26
कुसुमितलतावेल्लिता	7. 2	पृथ्वी	6. 34
केतुमती	2. 21	प्रमाण	5. 2
कोमलकला	6. 32	प्रमिताक्षरा	6. 7
क्रौञ्चपद	7. 26	प्रवृत्तक	3. 9
गलितक	2. 16	प्रहरणकलिका	6. 22
गाथा	7. 34	प्रहर्षिणी	6. 14
गीति	2. 14	प्राच्यवृत्ति	3. 7
गीत्यार्या	3. 18	भद्रक	7. 16
चण्डवृष्टिप्रपात	7. 33	भद्रविराट्	2. 20
चन्द्रवर्त्म	6. 24	भुजगशिशुसृता	5. 16

भुजङ्गप्रयात	6 2	वितान	5. 3
भुजङ्गविजृम्भित	7. 31	विपरीतवक्त्र	4. 16
भ्रमरविलसिता	5 37	विपुला आर्या	2. 10
मणिगणनिकरा	6 26	विपुला वक्त्र	4. 18
मत्तमयूर	6 16	विभ्रमगति	7 24
मत्ता	5. 23	विमला वक्त्र	4. 20
मन्दक्रीडा	7 21	विरला वक्त्र	4. 20
मन्दाक्रान्ता	6 37	विशाला वक्त्र	4 20
माणवकक्रीडितक	5. 13	विशिखा	3. 19
मात्रासमक	3 10	विश्लोक	3. 15
माधवीलता	7. 7	वृन्ता	5. 34
मालभारिणी	2 23	वृन्दारक	7 19
माला	6 25	वृषभगजविलसिता	6 31
मालिनी	6 27	वेगवती	2 19
मुकुलिता	5 6	वेल्लिता	6 30
यमवती	2 27	वैतालीय	3. 2
रथोद्धता	5 29	वैश्वदेवी	6 10
राजरमणीय	6. 21	शार्दूलविक्रीडित	7 5
रुक्मवती	5 22	शालिनी	5 35
रुचिरा	6. 15	शिखण्डिनी	5 8
ललना	6 29	शिखरिणी	6. 36
ललितविक्रम	7 14	शिखा	2 28
ललिता	4 3	शुद्धविराट	5 19
वंशपत्रपतित	6 38	शुद्धविराडृषभ	5 19
वंशमाला	6 6	श्येनी	5. 31
वंशस्था	6 4	समान	5. 1
वक्त्र	4 12-14	सारिणी	5. 33
वत्रक	5 11	सुभद्रिका	5 32
वनमालिनी	6. 8	सुवदना	7. 10
वर्धमान	4 5	सूचिमुखी	5 7
वसन्ततिलक	6 18	सौरभक	4 2
वाचालकाञ्ची	7 3	स्रग्धरा	7. 12
वातोर्मिमाला	5. 36	स्वागता	5. 30
वानवासिका	3. 14	हंसपदा	7 27
वायुवेगा	7. 6	हरिणी	6. 35
विकलवक्त्र	4 20	हरिणीप्लुता	2. 23

१० शेरो-शायरी [उर्दू के सर्वोत्तम १५०० शेर और १६० नज्म]—लेखक—अयोध्याप्रसाद गोयलीय। प्राचीन और वर्तमान कवियों में सर्वप्रधान लोकप्रिय ३१ कलाकारों के मर्मस्पर्शी पद्यों का सकलन और उर्दू कविता की गतिविधि का आलोचनात्मक परिचय।

सुरुचिपूर्ण मुद्रण। कपड़े की जिल्द। पृष्ठ सं ६४०। मूल्य ८)

११ आधुनिक जैन कवि—वर्तमान कवियों का कलात्मक परिचय और सुन्दर रचनाएँ

सम्पादक—रमा जैन। मूल्य ३॥)

१२ जैनशासन—जैनधर्म का परिचय तथा विवेचन करानेवाली सुन्दर रचना।

लेखक—पं सुमेरुचन्द्र जी दिवाकर न्यायतीर्थ। मूल्य ४।-)

१३ कुन्दकुन्दाचार्य के तीन रत्न—मूल लेखक गोपालदास जीवाभाई पटेल। अनुवादक—पं शोभाचन्द्र जी भारिल्ल न्यायतीर्थ। आ० कुन्दकुन्द के पंचास्तिकाय, प्रवचनसार और समयसार इन तीन महान् ग्रन्थों का संक्षिप्त और सरल भाषा में विषयपरिचय। मूल्य २)

१४ हिन्दी जैन साहित्य का सक्षिप्त इतिहास—[हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास तथा परिचय] लेखक—कामताप्रसाद जैन। मूल्य २॥=)

१५ पाश्चात्य तर्कशास्त्र [प्रथम भाग] भिक्षु जगदीश काश्यप एम ए। मूल्य ६)

प्रचारार्थ पुस्तकें मंगाने वाले महानुभावों को विशेष सुविधा।

*

ज्ञानोदय [श्रमण संस्कृति का अग्रदूत मासिक]

व्यक्ति स्वातन्त्र्यमूलक श्रमण संस्कृति के सन्देश द्वारा श्रम, शम और सम—स्वावलम्बन शान्ति और समता का सार्वजनीन उद्घोषण करने वाला मासिक पत्र

सम्पादक—मुनि कान्तिसागर, पं फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री, प्रो महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य

मूल्य ६) वार्षिक * एक प्रति ।=)

भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस सिटी